कीमती आँसू

[१२ मौलिक कहानियों का संग्रह]

लेखक

श्री रा० र० खाडिलकर, बी० एस-सी०

शिवाजी प्रकाशन-मन्दिर,

लखनऊ.

प्रकाशक
राधाबाई पंडित,
शिवाजी प्रकाशन मन्दिर,
लखनऊ

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव,
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स लखनऊ

दो शब्द

केवल दो ही शब्द लिखना चाहता हूँ—दो शब्द कहकर आधी किताब भूमिका से भरनेवाले लोगों को भी मैं जानता हूँ। कहानियाँ पढने से ही स्पष्ट हो जायगा कि वे फुरसत मे अल्प समय की ही कृति हैं। पत्रकारी की चक्की मे पिसते हुए जो कुछ समय बचा उसी मे ये लिखी गयी हैं। अधिकतर ७-८ साल पहले लिखी गयी हैं, पृष्ठभूमि भी उसी समय की है, पर उनमें हृदय के अतस्तल की भावना, मस्तिष्क के मैदान पर चलनेवाला विचारों का सघर्ष और अंतःकरण की उत्प्रेरणा का चित्र हैं और यह चित्र सत्य-धर्म पर ही आधारित रहता है इसलिए ये कहानियाँ आज भी उतनी ही नूतन मालूम देती हैं जितनी लिखी जाने के समय थीं।

अधिकतर कहानियाँ 'आज' मे छप चुकी हैं। 'आज' सपादक ने उदारता के साथ उन्हे पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिए अनुमति दी जिसके लिए उनका आभारी हूँ। प्रकाशक के बिना तो पुस्तक ही प्रकाश में न आती। उनको भी धन्यवाद देना कर्तव्य है।

संसार आफिस, बनारस,
१—६—४५

रा० र० खाडिलकर

कीमती आँसू

दो साल पहले मैं घूमते समय चुनकर लाजपतराय रोड को ही क्यों टालता था इसका कारण मेरे दो-चार मित्र ही जानते हैं। शाम को कम्पनीबाग में तालाब के चक्कर लगाने के बाद अगर किसी दिन दशाश्वमेध घाट पर जाने की इच्छा होती तो मैं लाजपतराय रोड न होकर कबीर चौरा, बेनियाबाग होता हुआ जाता। न मुझे कटपीसवाले आगा के भूत का डर था, न आसभैरो से कुछ आशा थी। चौक के थाने का डर तो कतई न था और न उसके पश्चिमवाले 'बाजार' में भटक जाने का भय था। फौवारे के फूलवाले, चित्रा की चकाचौंध, कारमाइकेल के बगला मासिक-पत्र, सत्य नारायण मन्दिर की रसिकता, मदन थिएटर का कचालू और बुंदियावाला, मारवाड़ी अस्पताल की मानवता इन सबसे मैं विरक्त था सो बात भी नहीं। १६३०-३१ का युवक संघ का लाल झंडा भी अब उस सड़क पर नहीं था कि मैं उसके हँसिये हथौडे से डरता। तो फिर मैं लाजपतराय रोड पर जाने से क्यों डरता था ?

मुझे बीमा कम्पनियों से बड़ी चिढ थी।

अधिकतर बीमा कम्पनियों के दफ्तर लाजपतराय रोड पर ही हैं।

मैं उनके पास जाने से डरता था।

बीमा कम्पनियों के एजेण्ट गोंद की तरह होते हैं। जहाँ एक बार

चिपक गए, फिर छोड़ते नहीं। मैं तो उन्हे चूँटे ही बनाना चाहता था। पर चूंटे 'प्राण जाइ पर वचन न जाई' उनका निश्चय रहता है और एजेण्ट, इनके प्राण जायॅ तो बीमा कम्पनी एक भी न बचे।

इसीलिये अपने प्यारे दोस्त नरोत्तम के यहाँ जाना भी मैंने छोड दिया। 'कामरेडी' से पेट नहीं भरा इसलिये वह अब बीमा कम्पनी का एजेण्ट हो गया था।

* * *

एजेण्टों की तरह मैं डाक्टरों से भी डरता था। इसलिये नहीं कि बीमा कम्पनियों का डाक्टर से सम्बन्ध रहता है। एजेण्ट तो जान बीमा करने के लिये जिन्दगी में ही रुपया ऐंठता है पर डाक्टर मरने पर भी फीस और अपना बिल वसूल करता है। डाक्टरों का डर जेल के डाक्टर ने मेरे पेट में भर दिया है। जेल में मेरे एक मित्र का पेट दर्द करने लगा। झट डाक्टर ने बड़ी तत्परता से आकर उसके पेट पर टिंक्चर आयोडिन पोत दिया। तभी से मैं डाक्टरो का शत्रु हो गया। गनीमत इतनी ही है कि डाक्टरों से मेरा पाला कभी नही पड़ा। जेल मे और जेल के बाहर आने पर भी मुझे डाक्टरों क पास जाने की जरूरत न पड़ी यही मेरा 'डाक्टर प्रूफ' होने का 'प्रूफ' है। मेरे जितने भी रिश्तेदार अबतक मरे हैं उनके मरने के समय डाक्टर ही बुलाए गये थे शायद इस बात ने भी मेरे डर को और बढ़ा दिया हो। पर किसी भी हालत में मेरा मन यह मानने के लिये तैयार न था कि मरते समय डाक्टरों को बुलाने मे रिश्तेदारों की मूर्खता है, डाक्टरों की नही। कारण कुछ भी हो, काली फ्रेम का चश्मा लगाये खुले बटन के कोट की जेब में स्टेथोस्कोप रखकर, पैण्ट की जेब में दोनों हाथ डाले झूमते हुए चलनेवाला जब कोई डाक्टर मेरे सामने आता नजर आता है तो मैं सड़क की दूसरी पटरी पर भाग जाता हूँ।

* * *

अब आप सोचिए कि अगर किसी दिन मैं नरोत्तम को कम्पनीवाला के पास पकड़कर लाजपतराय रोड पर इस तरह जाता हूँ मानों मैं उधर का रोज का घूमनेवाला हूँ, और बॉसफाटक पर नरोत्तम की बीमा कम्पनी के डाक्टर की दूकान में घुसकर डाक्टर वसु से यह कहता हूँ कि 'मुझे अपना जान बीमा कराना है, मेरी डाक्टरी जाँच कीजिये' तो आप क्या कहेंगे।

अवश्य ही पागल या सनकी कहेंगे।

नरोत्तम तो अवाक् हो गया। उसने डाक्टर को एक ओर ले जाकर कहा कि देखिये 'लुनाटिक असाइलम' में तो नहीं भेजना पड़ेगा। आखिर डाक्टर और बीमा कम्पनियों के बारे में अपने विचार बदलने का कारण उन्हे बताना पड़ा तब जाकर कहीं उन्हें मेरी बातों पर विश्वास हुआ। डाक्टरी जॉच के बाद मैंने 'प्रपोजल फार्म' और 'फ्रेंड्स रिपोर्ट फार्म' नरोत्तम के हवाले कर दिया। ये फार्म नरोत्तम ही किसी दिन मेरे घर पर फेक गया था और मेरी पत्नी के कारण वह टुकड़े टुकड़े होने से बचा था। मेरी पत्नी, जी हॉ, मेरी शादी भी हुई है। पत्नी सुशीला और छोटे आनन्द के कारण मेरा छोटा सा संसार आनन्द-साम्राज्य हो गया है (साम्राज्यवाद का नाश हो !!) और मेरा वीरान सहारामय जीवन 'स्वर्गीय' (इति 'आज') बन गया है।

तब आप जरूर कहेंगे कि मेरी पत्नी ने या अप्रत्यक्ष रूप से मेरे ससुर साहब ने बीमा कराने के लिये मुझे बाध्य किया होगा। स्त्री-हठ की मुझ पर जीत हो गयी होगी।

जी, नहीं !

जहॉ स्त्री-हठ है वहॉ आनन्द साम्राज्य हो ही नहीं सकता।

तो फिर ?

सुनिये—

शहर के सबसे बड़े साहित्यिक श्री रामचन्द्र खरे को आप जानते ही

हैं। परसाल उनका मृत्यु हुइ। उस दिन सारा शहर शोकग्रस्त हो गया था। सारे भारत ने एक कंठ से कहा कि श्री खरे की मृत्यु से हिंदी साहित्य की अपूर्णीय हानि हुई है और निकट भविष्य में उनका स्थान लेनेवाला कोई दूसरा साहित्यिक नजर नहीं आता। स्वर्गीय खरे ने अपना सारा जीवन साहित्य-सेवा में लगा दिया था। किताबे लिखकर वे जीवन यापन करते थे। साहित्य सेवा पर जीवन के आर्थिक सूत्रों को निर्भर रखना कितना कठिन है इसे कहने की आवश्यकता नही। पर स्वर्गीय खरे आदर्शवादी थे। एक आदेश उन्होंने अपने सामने रखा था। साहित्य सेवा करना। जो कुछ ३०-४०) महीने भर में मिल जाता था उसी में स्त्री, २ छोटे-छोटे लड़के और २ लड़कियों का, ६ आदमियों के कुटुम्ब का भरण-पोषण कर लेते थे। आप जानते ही हैं कि स्वर्गीय खरे मेरे मित्र थे। मैं उनके आदर्शवादी तपस्वी जीवन की बड़ी तारीफ करता था पर जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उस दिन मेरी आँखें खुल गयी। उस बड़े साहित्यिक के अन्तिम संस्कार के लिये हम मित्रों को चन्दा करना पड़ा। हम लोगों के सामने सवाल आया कि अब उनके स्त्री-बच्चों का क्या होगा। जो आदर्शवाद बच्चों की पढाई-लिखाई और कुटुम्ब की परवरिश की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेता, क्या वह स्पृहणीय है। उस दिन मेरा दिमाग ठिकाने पर नही था। श्री खरे की मृत्यु ने आजतक की मेरी विचार-धारा को पलट दिया। १०-२० दिन मेरे दिमाग में काफी हलचल थी। मैं अपने मन से पूछता था कि क्या व्यवहार और आदर्श में मेल नही बैठाया जा सकता? व्यवहार और आदर्श का यह झगड़ा हमेशा चलता ही रहेगा? साथ साथ कई सवाल मेरे दिमाग को तंग कर रहे थे। पुरुष-प्रधान कुटुम्ब संस्था पर भी मैंने बहुत सोचा। एक पुरुष के मरते ही सारा कुटुम्ब निराधार क्यों हो जाता है? क्या इसके लिये यही उपाय है कि आदर्शवादी मनुष्य शादी और बच्चों के झमेले में न पड़े। पर यह सवाल का जवाब तो

नहीं है। यह तो प्रश्न को ही उखाड़ फेंकना है। फिर ! फिर मुझे रूस की याद आयी। मार्क्स और उसके सिद्धान्त मेरे दिमाग में नाचने लगे। पर जब तक सारी दुनिया मे समाजवादी प्रणाली नहीं हो जाती तब तक क्या मानव को ये सब दुःख भोगने ही पड़ेंगे ?

एक महीने तक इसी तरह सोच विचार मे था। कुछ उपाय नजर न आता था। मालूम होता था कि दुनिया में चारो ओर अँधेरा ही अंधेरा है। मेरी अपनी स्थिति पर मैंने नजर डाली। श्री खरे के कारण मैं भी आदर्शवादी हो गया था। क्या मेरा आदर्शवाद आखीर तक टिका रहेगा ? मान लीजिये कि मैं मर गया तो मेरी प्यारी सुशीला और लाडले आनन्द का क्या होगा ? मुझे जरा भी चैन नहीं था। वैराग्य के विचार आने लगे। पर एक दिन मेरे इन सब सवालों का एक छोटा सा जवाब मुझे मिल गया। स्वर्गीय खरे के कागज पत्रों को देखते समय हम लोगों को मालूम हुआ कि उन्होंने अपनी जान का बीमा कराया था। बीमा कम्पनी से अब ५००) रुपए मिल जायेंगे। उनके कुटुम्बियों को कुछ राहत मिलेगी।

मैं घर लौटा तो इसी सोच मे। मैंने सोचा कि अगर मर जाऊँ तो जो हाल इस एक महीने में स्वर्गीय खरे के स्त्री-पुत्रों का हुआ वही हाल मेरे सुशीला-आनन्द का होगा। नही, ऐसा मैं कदापि नहीं होने दूँगा। मैंने भी बीमा कराने की ठानी और इसीलिए मैं उस दिन नरोत्तम को पकड कर बॉसफाटक पर डाक्टर वसु की दूकान में बीमा कराने के लिये आवश्यक डाक्टरी जाँच कराने गया था।

* * *

आज मैं बहुत खुश था। दोपहर की डाक से मेरी 'पालिसी' आयी थी। खाट पर लेटे लेटे मैंने उस रंगीन कागज और कपड़े के लिफाफे को बड़ी सावधानी से खोला, मानों उसमें मेरे प्राण ही भरे हों। आनन्द बाहर खेल रहा था। सुशीला रसोईघर में थी। मेरे हाथ में

'पालिसी' थी। मैं सोच रहा था, अर्ध जागृतावस्था में ....

मैं मर गया हूँ। सुशीला आनन्द रो रहे हैं। घर में खाने को नहीं है। अचानक बीमा कम्पनी का भेजा हुआ १००० रुपया उनका मिलता है। उनके चेहरे पर शान्ति और समाधान का भाव दौड़ आता है। मुझे भी खुशी होती है।

उसके बाद दूसरा दृश्य दिखाई देता है। मैं बूढा हो गया हूँ। ३–४ बच्चे घर में पढ रहे हैं। आनन्द नौकरी पर से आया है। मैं बीमा कम्पनी के यहाँ से आया हुआ १००० का चेक उसे भुनाने के लिये देता हूँ। बूढ़ी सुशीला हँसते हुए दौड़ आती है और कुछ सवाल कर बैठती है। मैं भी उसको हँसते हँसते उत्तर देता हूँ।

इसके बाद मुझे नींद लग गयी। मैं सत्य स्वप्न के संसार में विचरण करने लगा।

ओफ् कितना भयानक स्वप्न था! अब सोचने लगता हूँ तो कलेजा काँप उठता है—

मैं खाट पर बीमार पड़ा हूँ। चारों ओर स्टेथोस्कोप कान में लगाये हुए डाक्टर खडे हैं। चिंतित होकर सुशीला मेरे सिरहाने बैठी है। मेरी सेवा कर रही है।

इसके बाद मैं मर जाता हूँ। लोग मुझे अरथी पर बाँधकर श्मशान घाट ले जाते हैं।

और मैं खुद यह सब देख रहा हूँ। सशरीर! घर पर सुशीला रो रही है। उसने अपनी चूड़ियाँ फोड़ डाली। माँग का सिंदूर पोंछ डाला। हमेशा ऊधम मचाने वाला आनन्द चुपचाप माँ का मुख देखता है। वह रो रही है। वह भी रोने लगता है। दोनों गले लग कर खूब रोते हैं।

मैं बाहर से आता हूँ। कहता हूँ—

'सुशीला, रो मत, जो होना था सो हो गया। वह अटल था।

परमेश्वर के निश्चय को मनुष्य नहीं बदल सकता। पिछली बातें सब भूल जा। आनन्द को देख। उसके लिये तुझे जिन्दा रहना पड़ेगा। ले ये काग़ज इन पर दस्तखत कर।'

इतना कह कर मैंने बीमा कम्पनी से रुपया पाने के 'क्लेम पेपर्स' उसके आगे रखे। एक बार आनन्द की ओर देखकर उसने टेबुल पर पड़ी हुई मेरी फाउण्टेन पेन उठा ली और सर नीचा कर दस्तखत करने लगी।

दस्तखत करते समय फार्म पर दो तीन बूंद पानी के गिरे।

मैंने कहा "देखो सुशीला, पसीना आया है तुझे, जरा पोंछ ले उसे।"

'अच्छा'—शात भाव से उसने कहा। उसका सर नीचे ही था। सब फार्मों पर दस्तखत करने के बाद सुशीला ने अपना मस्तक ऊपर किया।

मैंने उसकी ओर देखा।

मैं क्या देखता हूँ। सुशीला की दोनों आँखों से अश्रु धारा बह रही है।

"सुशीला! सुशीला!!" मैं जोर से चिल्लाया।

* * *

"उठिये! उठिये!! क्यों चिल्ला रहे हैं? क्या हो गया आपको?" सुशीला मुझे जगा रही थी।

"सुशीला! सुशीला!!" मैंने सुशीला की ओर देखा मेरा हृदय धक् धक् कर रहा था। मेरी छाती पर मेरी 'पालिसी' थी। हाथ में सिनेमा की नोटिस लेकर आनन्द कमरे में दौड़ा आ रहा था।

"बाबूजी! बाबूजी! आज सिनेमा देखने चलेंगे? 'कीमती आँसू' है।" आनन्द कह रहा था।

मैंने एक बार फिर सुशीला की ओर देखा। पालिसी

उठायी उसके टुकड़े टुकड़े कर जमीन पर फेंक दिये। सुशीला दौड़ी।

"यह आप क्या कर रहे हैं?" वह चिल्लायी।

" !!!" मेरा जवाब।

आनन्द मेरी ओर देख रहा था। मेरी नजर सुशीला के मुँह पर थी और सुशीला 'पालिसी' के उन फटे टुकड़ों की ओर देख रही थी। उसे क्या मालूम था कि उनमें उसके आँसुओं की कीमत है!

लता, मुक्ता और पृथ्वी

जुलाई का महीना था और सुबह का समय। ठढी-ठढी, मीठी, धीमी बरसाती हवा बह रही थी। ऐसे समय मनुष्य खुद प्रकृति के अधीन हो जाता है। मैं भी प्रकृति के आनंद में तल्लीन होता हुआ सात साल की नन्हीं, गुलाब की तरह कोमल अपनी प्यारी बेटी कमला को लेकर गर्ल्स स्कूल को जा रहा था, उसे भरती कराने के लिए। उस स्कूल की प्रधानाध्यापिका का नाम था कुमारी मुक्ता। उम्र होगी करीब पैंतालिस साल की। मैं उन्हे अच्छी तरह जानता था। वे समझती थी कि ससार मे स्त्री को पुरुष की गुलामी से बचाने के लिए ही मेरा (मुक्ता का) जन्म हुआ है। उनका खयाल था कि स्त्रियों की स्वतंत्रता के मार्ग मे पुरुष ही बाधक होते हैं। प्रचलित धर्म एवं रूढियाँ और नीति सम्बन्धी कल्पनाएँ स्त्रियों को पुरुषों के बधनों मे जकड़े रहती हैं। स्त्रियों के उद्धार का सिर्फ एक ही उपाय है और वह है उनकी आर्थिक स्वतत्रता। उसके प्राप्त होते ही स्त्री मुक्त हो जायगी।

मैं खुद उनके मत से सहमत नहीं हूँ। इससे कुमारी मुक्ता से मेरी कई बार भिड़त हो जाती थी। सार्वजनिक सभाओं मे कभी ऐसा मौक़ा भी आता था कि मैं सभापति और कुमारी जी प्रधान व्याख्यात्री

या मैं प्रधान व्याख्याता और कुमारी जी सभानेत्री होती थीं। ऐसे समय हम दोनों की खूब खटकती थी। कुमारीजी मुट्ठियाँ बाँध बाँध कर जोर से लेक्चर झाड़तीं मानो उनके हाथ में स्त्री स्वाधीनता का झंडा हो और उसे कोई दुष्ट पुरुष छीन रहा हो। मैं कहता कि सिर्फ आर्थिक स्वातन्त्र्य से ही स्त्री मुक्त न होगी। स्त्रियों की स्वाधीनता का सवाल इतना सरल नहीं है कि वह आर्थिक स्वातंत्र्य जैसे सहज उपाय से हल हो जायगा।

कुमारी जी और मैं, दोनों को वाद-विवाद करने मे बड़ा मजा आता था। आज भी मैं इसी इरादे से उनके पास जा रहा था। कमला को भरती कराने के बाद घंटे डेढ़ घंटे बहस किये बिना मुझे और कुमारीजी को भी चैन नहीं पड़ सकता था।

स्कूल में पहुँचने के बाद कुमारीजी ने कमला को मास्टरानी के हवाले कर दिया और मेरे सामने की कुर्सी पर आकर डट गयीं। मैं समझ गया कि मेरा आना मानो कुमारीजी के ग्रामोफोन को चाभी देकर रेकर्ड पर साउण्ड-बक्स धर देना हो गया। बस, ग्रामोफोन अब अपने आप बजने लगेगा। पर मुझे एक घटे से अधिक समय न था। इसलिये मैंने उनसे पहले ही कह दिया कि आपका 'ग्रामोफोनवादन' सुनने के लिए मेरे पास एक घटे से अधिक समय नही है। एक घटे के बाद मैं आपका 'रेकर्ड' तोड़ दूँगा।

कुमारीजी ने मेरे सामने एक चिट्ठी फेंकी और कहा—"जनाब, पढ़िये इसे, आज की डाक से ही आयी है। देखिये पुरुषों का पौरुष।"

मैं शुरू से अत तक उस चिट्ठी को गौर से पढ़ गया। उसमे लता नामक एक लड़की की दुःख-कहानी दर्द भरे शब्दों में लिखी थी। लता के माता-पिता पुराने खयालों के होने के कारण उन्होंने उसे बस चिट्ठी लिखना आने तक ही पढ़ाया था और पंद्रह वर्ष की अवस्था में

ही उसकी शादी एक अमीर लड़के से कर दी थी। लता अपने पड़ोस में रहने वाले एक तेजस्वी युवक को चाहने लगी थी पर विवाह के समय उसकी इतनी हिम्मत न हो सकी कि वह अपने प्रेम की बात अपने माता-पिता से कह देती। सीधीसादी गाय की तरह उसके गले का पगहा उस अमीर के घर के खूँटे मे बाँध दिया गया। अमीर होने पर भी उसका पति तरुराज बड़ा ही अच्छा आदमी था। खुद लेखक और कवि था। वह सिर्फ शारीरिक वासनाओं की पूर्ति के लिए ही पत्नी न चाहता था। वह एक मित्र चाहता था, प्रशसक चाहता था; उसके हृदय से, मन से, आत्मा से अपना हृदय, मन और आत्मा मिलानेवाली संगिनी चाहता था। लता यह काम न कर सकी। जिन कागजों पर तरुराज की कविताएँ छपती थीं उनका मूल्य लता के लिए पुड़िया बाँधने के कागजों से अधिक न था। मतलब यह कि लता तरुराज की बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकी। तरुराज शिक्षित युवतियों से मिलने जुलने लगा। इस सपर्क का अवश्यम्भावी फल प्रेम पैदा हो गया और उसने लता के रहते एक शिक्षिता से दूसरी शादी कर ली। ऐसी हालत में लता को उस घर मे रहना असह्य हो गया। वह घर के बाहर निकल पड़ी। पर उसे ठौर ठिकाना कहाँ! माता-पिता उसकी शादी के बाद कहीं तीर्थ के लिए चले गये थे। कुछ समय के लिए वहएक अनाथाश्रम में ठहर गयी और उसने कुमारी मुक्ता को पत्र लिखकर पूछा कि क्या मैं आपके पास चली आऊँ।

यह चिठ्ठी उसकी थी। पढ लेने के बाद मैंने उसे मोड़कर टेबुल पर एक तरफ रख दिया और फिर पुरुषों को दी जाने वाली गालियाँ सुननेके लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने लगा।

कुमारी मुक्ता ने कहा—"देखा आपने, इस समय यदि लता आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होती तो उसे इस तरह दरदर भीख माँगने और ठुकराये जाने की नौबत न आती।"

मैंने पूछा—"कुमारीजी, यह तो बताइये कि क्या दुनियाँ मे सिर्फ आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति ही सबसे जरूरी बात है? क्या मनुष्य के हृदय में कौटुंबिक जीवन की एषणा, अपनी एक 'विश्वामित्री' सृष्टि रचने की लालसा और एक छोटा सा सुन्दर सुहावना नया संसार बसाने की अंतर्वेदना नहीं होती? लता घर के बाहर क्यों निकली। वह निकली इसलिये कि जो चावल वह खाती थी उसके दाने दाने में प्रेम नहीं था; जो रोटी उसे मिलती थी उसमें स्नेह-रस न था। उसके पति पर उसका कोई मानसिक अधिकार न था। उसी प्रेम के अभाव में वह घर के बाहर निकली।

"स्त्री की स्वाधीनता के आन्दोलन ने उन्नीसवीं सदी के मध्य में ही जोर पकड़ा। उसी समय इसके समर्थकों के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आर्थिक स्वातंत्र्य से ही स्त्रियों का उद्धार हो सकता है। आपको मालूम होगा कि महर्षि मार्क्स का मैनीफेस्टो इसी के लगभग निकला था। आज यूरोप के उन देशों में तथा अमेरिका मे जहाँ स्त्रियों को काफी आर्थिक स्वाधीनता मिली है, कौटुंबिक जीवन की कैसी छीछालेदर हो रही है, यह भी आपसे छिपा नहीं है। शारीरिक वासनाओं की पूर्ति तथा कौटुंबिक जीवन की आवश्यकता ये दोनों तो मानव की मूल प्रवृत्तियां हैं। यही वजह है कि आर्थिक स्वाधीनता तथा कौटुम्बिक जीवन की भूख- इन दोनों का झगड़ा आज पश्चिमी देशों मे चल रहा है। दुर्भाग्य से प्रकृति ने स्त्रियों के पीछे ही मातृपद लगाया है। अतः अब इस पूँजीशाही के जमाने में आर्थिक स्वाधीनता के साथ साथ स्त्रियों को मातृपद भी प्राप्त करना सम्भव है या नही, यही सवाल है। इसे हल करने पर ही मानवों के भविष्य का अच्छा या बुरा होना निर्भर है।

"आपने मेरे सामने लता का उदाहरण रखा है। मैं आपके सामने दूसरा उदाहरण रखता हूँ। छः सात साल पहले मेरी मुलाकात कुमारी पृथ्वी नामक एक लड़की से हुई थी। वह उस समय एम० ए० में

पढती थी। आपकी लता की तरह वह भी एक वर्गवादी युवक काम्रेड आदित्य से प्रेम करने लगी थी। भाई आदित्य पृथ्वी को चाहता था। उन दोनों की शादी निश्चित हो गयी। पर शादी होने के पहले ही सरकार ने भाई आदित्य को गिरफ्तार कर लिया। उसके साथ और भी पचास साठ आदमी पकड़ लिये गये। सरकार ने वर्गवाद को दबाने के लिये एक षडयन्त्र केस चलाया। पृथ्वी ने कहीं नौकरी कर ली और वह आदित्य के छूटने की राह देखने लगी पर आदित्य का मुकदमा बराबर चार वर्ष तक चलता रहा। अन्त मे पृथ्वी और आदित्य की शादी सिविल मैरिज की प्रथा के अनुसार जेल में ही जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट के सामने हुई। दुर्भाग्य से शादी के आठ ही दिन वाद स्पेशल जज ने अपना फैसला सुना दिया—आदित्य को पद्रह साल की सजा हो गयी। पृथ्वी के लिये सम्बन्ध-विच्छेद का मार्ग खुला था पर वह आजकल आदित्य का वर्गवाद के प्रचार का काम आगे बढा रही है और उसके छूटने के बाद वे दोनों अपना नया संसार बसायेंगे।

"कुमारीजी, आप भी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हैं, श्रीमती पृथ्वी भी हैं। पर मैं श्रीमती पृथ्वी को आपसे अधिक सुखी समझता हूँ।

"मेरा यह निश्चित मत है कि स्त्रियों को लता या मुक्ता होने की आवश्यकता नहीं है। उन्हे पृथ्वी होना चाहिये। तरुराज के गिर पड़ते ही लता नष्ट हो जाती है। मुक्ता के लिए नीरस, स्नेहशून्य जीवन बिताना कठिन हो जाता है। पर पृथ्वी, हमेशा प्रलय के अन्त तक, दूर एकदम दूर अपने प्रेमी के आकर्षण से, अपने आकर्षण-बिंदु पर ध्यान रखकर सूर्य के चारों ओर सदा घूमती रहेगी।"

शिकार

'अरुण' मासिक पत्रिका के संपादक ने 'शिकार' पर एक लेख माँगा था। 'अरुण' का हर साल एक विशेषांक निकला करता और उस विशेषाक मे जगली जानवरों के शिकार पर लेख अवश्य रहता। किसी मुकदमे में सलाह लेने के लिए एक बार 'अरुण'-संपादक मेरे बँगले पर आये थे। मेरे बड़े कमरे की दीवारों पर हिरन और बारह-सिगों के चमड़े लटकते देख उन्होंने पूछा—'आप शिकार भी करते हैं?'

'क्यों?'

'ऐसे ही, वकालत का पेशा करनेवाले लोग शिकारी बहुत कम होते हैं।'

'जी नहीं' मैंने हँसते हुए कहा 'वकील लोग ही अच्छा शिकार फँसाना जानते हैं। अगर ऐसा न होता तो आप आज मेरे घर कैसे आते?'

सम्पादक की ठहाकेदार हँसी में मेरी हँसी घुस गयी।

हमारा काम समाप्त हुआ और जाते समय सम्पादक मुझे कहते गये 'शिकार के अनुभवों पर आपका एक लेख हमें अवश्य मिलना चाहिये। फीस की फिकर मत कीजियेगा।'

फीस का नाम सुनते ही किस वकील का चेहरा नही चमकता। मैंने कहा—'देखूँगा, इस जिरह और पेशी से फुरसत तो मिले।'

* * *

'अरुण'-सम्पादक का भाग्य बड़ा प्रबल मालूम पड़ता था। उनसे बातचीत होने के दो ही दिन बाद चाचाजी घर आये और उन्होंने मुझे सूचना दी—'देखो तुम्हे चलना होगा। ललिता की शादी तै कर दी है।'

'ललिता की शादी' मैं अचम्भे मे पड़ गया। अभी तो वह पूरे १४ साल की भी नहीं हुई और शादी की इतनी जल्दी! भला मैट्रिक तक तो पढ़ने देते। ३ साल में क्या इतना बिगड़ जाता?

चाचाजी मुझे समझाने लगे—'भैया, अब मैं बूढा हो चला। इस शरीर का क्या भरोसा? ईश्वर की कृपा न हुई, एक बेटा था वह भी उसने न रहने दिया। उसकी एक बेटी है। उसकी शादी आँख के सामने कर दूँ तो कर्तव्य से उऋण हो जाऊँगा। फिर राम राम भजता रहूँगा।'

बूढ़े की आँखें भर आयीं। मृत पुत्र की याद से आँसुओं का प्रवाह जारी हो गया।

बातचीत का सिलसिला बदल देने के लिए मैंने कहा—'अच्छा चाचाजी, बारात कहाँ से और कब आएगी?'

'बारात?' चाजाजी ने कहा, 'देखो भैया, बात ऐसी हुई कि लड़के वाले रहते हैं अजनगढ़ रियासत में। लड़का दीवान का कोई दूर का भतीजा लगता है। बारात आती तो कम से कम सौ आदमी आते। भले आदमी हैं, उन्होंने हमीं लोगों को वहाँ आने को कहा है। मैंने भी इसी को ठीक समझा।

'देखो, हम लोग ७ तारीख की शाम को जायँगे। तैयार रहना। हाँ, और देखो, तुम्हारे लिए, खास तुम्हारे लिए, २ दिन अजनगढ के खास जगल मे शिकार का प्रोग्राम रखा है।'

'शिकार, अच्छा चाचाजी, जरूर आऊँगा।' मेरे सामने 'अरुण'-सम्पादक का तकाजा नाच रहा था।

*　　　　*　　　　*

६ तारीख को मैं चाचाजी के घर गया। मुझे देख ललिता दौड़ी आयी—'चाचा, चाचा' उसने कहा—'ये दादा मानते ही नहीं, मैंने कहा २ साल और शादी मत करो, मुझे मैट्रिक तो होने दो। पर किसी की कुछ सुनते ही नहीं। तुम तो समझाओ। मालूम नही किस अंजन-गढ़ के जंगल के राजा ढूँढा है मेरे लिए।'

'पगली कहीं की, रानी तो बनेगी' मैंने कहा, 'अब क्या होगा। कल तो सब लोग चलेंगे ही।'

चाचाजी बाजार गये थे, मिले नहीं। चाय वगैरह पीकर मैं वहाँ से चला। सड़क की दूसरी ओर रहते थे एक परिचित डाक्टर। उनसे भी मिल लूँ इस खयाल से वहाँ गया। बड़े हाल मे डाक्टर नहीं थे। उनके लड़के के कमरे में गया। रमेश कापी पर कुछ लिख रहा था। मैंने पुकारा—'रमेश'।

न मालूम क्यों वह आवाज सुनकर घबरा सा गया। चट उठकर मेरी ओर देखा और कापी बंद कर एक ओर खसका दी। जरा सँभ-लने के बाद बोला 'आइये आइये भैया, 'डाक्टर साहब तो बाहर गये हैं, आते ही होंगे।'

डाक्टर साहब के आने तक मैंने रमेश से ही गप्प लड़ाने की ठहरायी।

मैं बोला—'क्यो रमेश, तुमने सुना, ललिता की शादी होनेवाली है अंजनगढ़ में। तुम नहीं चलोगे ?'

'चलता भैया, चाचाजी ने कहा था, पर क्या करूँ, फाइनल इम्त-हान जो करीब है।'

इतने मे डाक्टर बाबू आ गये। मालूम होता था रमेश बाहर चले जाने का कोई बहाना ही ढूँढ रहा था। वह चला गया।

दस पाँच मिनट डाक्टर साहब से बातें करने के बाद मैं चलने लगा। टेबुल पर नया 'नेशनल हेरल्ड' रखा था। डाक्टर से पूछकर लेता आया।

* * *

रात को बिस्तर पर लेटे लेटे 'नेशनल हेरल्ड' खोलते ही उसमें से एक कापी नीचे गिरी। रमेश की कापी थी वह। मैंने पहले समझा कोई ट्रिगोनामेट्री या डाइनैमिक्स का सवाल लिखा होगा उसमें, पर खोलने पर मालूम हुआ कि वह कुछ डायरी के तौर पर थी। मोह और उत्सुकता मुझे छोड़ न सकी। मैंने अनुचित जानकर भी उसे पढना शुरू किया। मैं जानता था कि कालेज स्टूडेएट की डायरी उपन्यास से भी बढ़कर दिलचस्प होती है। शुरू के ही पन्नों में बार बार ललिता का नाम देखकर मैं हैरान हो गया। शाम को रमेश का घबड़ाया हुआ चेहरा मेरी आँखों के सामने आया। कुछ सोचते संदर्भ लगाते ही मेरे मुंह से अचानक निकल गया 'यह बात है।'

डायरी मैं उलटता गया !

* * *

'बचपन से ही मुझे और ललिता को दूल्हा-दुलहन कहकर हम दोनों के घरवाले चिढाया करते। लोगों को हम दोनों की जोड़ी भी अच्छी लगती....................।

'ललिता अब मुझसे बोलने में भी सकुचाती है—खेलने की बात तो दूर। साडी पहनने लगी तो क्या हुआ? इससे क्या वह एकदम बडी हो गयी।

'आज कालेज जाते समय वह मिली थी। शनिवार होने के कारण उसका स्कूल सवेरे का था। वह स्कूल से लौट रही थी। मुझे जब तक नही देखा था, नाचती फुदकती आती थी। मुझे देखते ही रुक गयी। गले पर की साड़ी सिर पर चढ़ा ली। इतनी शर्म !! अंग्रेजी पढने पर भी लड़कियों की आदत नहीं जाती।

'आज नेहरूजी का चुंगकिंग से रेडियो पर भाषण होनेवाला था। मैं शाम को चाचाजी के घर गया। उनके घर रेडियो था। मेरे जाते ही ललिता भागने लगी। किसी ने उसे चिढ़ाया दूल्हा आया है। 'आने दो, दूल्हा होगा तो अपने घर का' ललिता ने मुझे सुनाई दे इतने जोर से कहा—और वह भागी। ३-४ साल में ललिता के ये शब्द मैंने पहले पहल सुने थे—'दूल्हा होगा तो अपने घर का'। कितने मीठे शब्द थे!

'सुना, चाचाजी इस साल ललिता की शादी करने का विचार कर रहे हैं'। इन्हे इतनी जल्दी क्या पड़ी है, नहीं मालूम।

'आज पिताजी के साथ मैं बाजार जा रहा था। रास्ते में चाचाजी मिले। उन्होंने पिताजी से पूछा 'ललिता रमेश की जोड़ी अच्छी दिखेगी न?' पिताजी ने मजाक करते हुए जवाब दिया 'दस हजार रुपये लूंगा दहेज में।' हम लोग हँसते हुए बिदा हुए। कभी कभी मजाक में भी सजा मिलती है। चाचाजी पिताजी के मजाक को सच तो न समझेंगे।

'आज चाचाजी घर पर आए थे। पिताजी ने मुझे बुलाया और कहा 'देखो रमेश, चाचाजी आये हैं, पूछते हैं, इस साल शादी करोगे।'

'मैं क्या जवाब देता। कह दिया 'नहीं, अभी जल्दी क्या पड़ी है।' १८ साल की तो उम्र ही है अभी। पढ़ना-लिखना खतम होगा, कमाने लगूँगा, अपने पैर पर खड़ा हो जाऊँगा, तब शादी की बात सोचूँगा।' 'देखो मैंने भी यही कहा था' पिताजी ने चाचाजी से कहा। चाचाजी चले गये।

'आज सुना ललिता की शादी कहीं अजनगढ़ में तै हो गयी है। इसी महीने में होगी.........।

'किसी ने ठीक कहा है, यह दुनिया एक रद्दी लायब्रेरी की तरह है। जिस किताब की हमें जरूरत होगी वह उस लाइब्रेरी में कभी न मिलेगी।

'प्रभात का 'आदमी' बड़ा अच्छा है। आज फिर जाऊँगा उसे देखने। यह चौथी बार है। क्या कहा है उसमें—जिंदगी जीने के लिये

है। हाँ हॉ, जिदगी जीने के लिए है। ठीक है— केसर का संदेश है 'प्रेम के लिए दुनिया मत छोड़ना।'

*   *   *

मैं आगे पढ न सका। कुछ अधिक था भी नही। नौकर ने कमरे मे आकर मेरा ध्यान भग किया। 'बदूक साफ कर दी है, सामान में रख दूँ ?' उसने पूछा। 'नहीं' मैंने धीरे से कहा 'मैं शिकार खेलने न जाऊँगा। देखो अभी चाचाजी के घर चले जाओ और उनसे कहो कि एक जरूरी केस मेरे हाथ में आ गया है। शादी में न चल सकूगा।'

नौकर चला गया। फाउण्टेनपेन लेकर 'अरुण' सम्पादक को भी लिख दिया—जगली जानवरों का शिकारवाला लेख न लिख सकूंगा। कई पालतू जानवर गलतफहमियों के शिकार हो गये हैं। कहिये तो उसकी कहानी भेज दूँ।

प्रदर्शनी में

शहर में ऐसा कोई आदमी न होगा जो प्रोफेसर किशोर को न जानता हो। वे किसी कालेज या विश्वविद्यालय के प्रोफेसर न थे। इतना कहते ही आप चट से कह देंगे कि "वे मिठाई बनाने के, दर्जीगिरी के, कपड़ा धोने के या तीर चलाने के प्रोफेसर होंगे।" पर वे ऐसे तैसे नकली प्रोफेसर नहीं पूरे असली प्रोफेसर थे। किसी जमाने में वे बीजापुर के इण्टरमीडिएट कालेज के प्रोफेसर थे और आजकल शहर के एक हाई स्कूल के हेडमास्टर हैं। इकहरे बदन के, छोटे छोटे बालवाले, अधगोरे रंग के, छोटी-सी मूँछवाले पूरे ३० साल के थे पर हाथ में बेंत की पतली सी छड़ी लेकर चलते तब मालूम पड़ता था मानो अभी कालेज में पढ़नेवाला कोई छोकरा है। बड़े सौन्दर्य और कलाप्रेमी थे पर थे शहर के कट्टर सनातनी महामहोपाध्याय पण्डितों से बढ़कर नीतिमान। आजकल की पाखण्डनीति सौंदर्य और कला के प्रेम के आगे टिक नहीं सकती। प्रोफेसर किशोर क्वाँरे थे। रोज शाम को चौक में चम्पाबाई नामक वेश्या के यहाँ उसका नृत्य देखने और सौंदर्यपान करने जाते पर उनका यह प्रबल दावा था कि चम्पाबाई के यहाँ वे सिर्फ सौन्दर्य और कला के वास्ते जाते हैं। उनके सौन्दर्य

और कला-प्रेम को वासना कभी छू तक नही जाती ।। जिस दिन उनके इस सौन्दर्यप्रेम पर वासना की जीत होगी उस दिन वे सार्वजनिक रूप से चम्पाबाई से विवाह कर लेंगे । विवाहबाह्य अनीति कभी न करेंगे । उनके इस नीति-धैर्य और प्रबल दावे के कारण ही स्कूल-कमेटी उन्हे स्कूल से अलग करने की बार बार कोशिश करने पर भी अलग न कर सकी । भला १००० लड़कों का नियन्त्रण करनेवाला हेडमास्टर रोज रात को ६ बजे तक चम्पाबाई वेश्या के घर खुले तौर पर रहे और समाज की काच के प्याले की नाजुक नीति में जरा भी धक्का न लगे ? कैसे सम्भव था । पर प्रोफेसर किशोर की वाक्पटुता, अपने सिद्धान्तों की अटलता और नीतिमानता उनका कुछ भी बिगाड़ न सकती थी । ऐसे आदमी के लिये अगर मैं कहूँ कि शहर में ऐसा कोई आदमी न था जो प्रोफेसर किशोर को न जानता था तो इसमें गलती क्या होगी ?

चंपाबाई सुन्दरता की प्रतिमूर्ति थी । चम्पा के फूल की तरह कोमल, इकहरे बदन की, पीले सुनहरे रंग की थी । साधू महात्मा भी क्यों न हो एक नजर पड़ जाय तो वहाँ से नजर हटती न थी । नृत्य में उदयशंकर और कनकलता को मात कर देती पर कभी घर से बाहर नृत्य करने न जाती इसलिये यूरप अमेरिका में उसका नाम न हो सका था । बड़े-बडे राजे महाराजे उसका नृत्य देखना हो तो झख मारकर उसके घर जाते और हजारों रुपया दे आते । उदयशकर उसको अपना गुरु मानते और इसीलिये इन्होंने अपनी अन्तरराष्ट्रीय नृत्यशाला खोलने का स्थान काशी को बनाने का निश्चय किया है । नृत्य करने के लिये घर से बाहर न जाने का मन्त्र उसे उसकी माँ ने मरते समय दिया था । वह उसी का पालन करती थी । सुन्दरता की मूर्तिमान देवी और नृत्यकला में संसार में अजिक्य होने पर भी चम्पाबाई वेश्या थी, विदुषी नहीं । कुछ भी पढ़ी-लिखी न थी । एकदम ग्राम्य । आधुनिक सभ्यता अब तक उसके पास पहुँची न थी । लोगों को आकर्षित करने के लिये जो कुछ शृङ्गार

साज करना आवश्यक था और उसकी माँ ने जितना उसे सिखलाया था उतना शाम को करती बाद में उसे अपने देह की, शरीर की परवाह न थी। वह सौंदर्य, कला, सभ्यता, कुछ न समझती थी। अपना सौंदर्य लोगों को आकर्षित करने के लिये, और अपना नृत्य लोगों की जेब से पैसा निकालने के लिये एक साधन समझती थी । सब बातों के लिये उस के पास एक मूल्य था और वह चाँदी के टुकड़ों में चुकाया जा सकता था।

प्रोफेसर किशोर इसके लिये बड़ा अफसोस करते। चम्पा का सौंदर्य अब उनके लिये दूर से देखना असह्य हो गया था। इधर दो तीन साल से एक गुप्त भावना उनके हृदय मे पैदा हो गयी थी कि चम्पा का सौन्दर्य मेरे बिलकुल पास रहे। दिन रात चौबीसो घंटा वह मेरे नजदीक रहे। वह सुन्दर चीज मेरी हो जाय। सुन्दर चीज का सौन्दर्यपान दूर से ही भलीभाँति किया जा सकता है, यह उनका निश्चय अब ढलने लगा था। उन्हे अब मालूम पड़ता था कि सुन्दर चीज बिना अपनी हुए सन्तोष नही होता। चम्पा का सौन्दर्य पान करते करते वे थक गये थे, उकता गये थे। अब वे चम्पा का सौन्दर्य नहीं, चम्पा को चाहते थे। पर वे बेवकूफ, गधी चम्पा को नही चाहते थे। वे चाहते थे कि चम्पा के पास जिस तरह शरीर सौन्दर्य है उसी तरह बुद्धिसौन्दर्य भी आ जाय। गम्भीर विषयों पर वाद-विवाद करने की शक्ति उसमे आ जाय। शारीरिक वासना की तरह बौद्धिक वासना की पूर्ति करने की शक्ति भी उसके पास रहे। वे चम्पा को पढाने लगे थे पर चम्पा जन्म से वेश्या थी, वेश्या की बेटी थी, वेश्या का संस्कार उसके खून के एक एक कतरे में भरा था। प्रोफेसर किशोर के सब प्रयत्न फिजूल जाते। वे सोचते क्या ही अच्छा होता अगर चम्पा शिक्षिता भी होती। उससे शादी कर मैं आज स्वर्ग में होता। शिक्षा और प्रगल्भ बुद्धि की बात सोचते सोचते उन्हे कुमारी किशोरी की याद आती।

* * *

कुमारी किशोरी प्रोफेसर किशोर के पड़ोस मे रहती थीं। अवस्था होगी करीब २० वर्ष, काली सावली, रूपवती न होने पर भी आकर्षक थी। मैट्रिक पास थी और हृदय से प्रोफेसर किशोर पर प्रेम करती थी। चाहती थी कि प्रोफेसर किशोर से शादी हो जाय। प्रोफेसर किशोर ने एक दिन रोकर उसे कह दिया था कि मैं तुम्हारे दिल को जानता हूँ। अपना दिल तुम्हारी ओर आकर्षित हुए देखता हूँ पर तुममे रूप नही है। रोज शाम को स्कूल से घर आते ही तुम्हे देखकर मैं प्रसन्न हूँगा। मै सौंदर्यप्रेमी हूँ। सौन्दर्य-प्रेम के आगे मुझे और कोई चीज नही दिखाई देती। मै चाहता हूँ कि एक अतुल रूपवान युवती मेरी स्त्री होकर मेरे साथ शाम को घूमने निकले। बाजार में घूमनेवाले लोग हम दोनों की ओर देखकर एकदम चित्रवत हो जायँ। अपने को बड़ी बड़ी सुन्दरी लगानेवाली स्त्रियाँ लज्जा से सिर झुका दें। अमीर, श्रीमान्, धनवान युवक मेरी ओर देखकर ईर्षा से जलने लगें। मैं यही चाहता हूँ। मै तुमसे कैसे शादी करूँ। जब तक तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारा हृदय मेरे सौन्दर्य-प्रेम पर विजय नही पाता तब तक मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता।

कुमारी किशोरी ने भी निश्चय कर लिया था कि अगर शादी करूँगी तो किशोर से ही। वे उनकी देखभाल करती। कभी प्रोफेसर किशोर बीमार पड़ते तो वह उनके लिये चाय बनाती, दवादारू का प्रबध करती। पर किशोर का सौंदर्य-प्रेम अभी पिघला नहीं था। चपा से उन्हे अभी आशा बाकी थी।

* * *

चपा का तबलची महमूद आज चाय पीने किशोर के यहाँ आया था।

चाय पीते-पीते महमूद ने बात छेड़ी "प्रोफेसर साहब आप शादी क्यों नही करते?"

"महमूद, तुम सब जानते हो और मुझसे ये बातें पूछते हो?'

"जी, नहीं मैं आपको नही जानता और इसीलिये पूछ रहा हूँ। मैं

आपके बारे में सोचने लगता हूँ तो मेरी अक्ल गुम हो जाती है। आप मेरे लिये एक बुझौवल हो गये हैं। आखिर आप क्या चाहते हैं? ऐसी कौन सी चीज चाहते हैं जो आपको नहीं मिल सकती?"

"महमूद, मैं चपा को चाहता हूँ। मैं उससे प्रेम करता हूँ।"

"गुस्ताखी माफ करें अगर मैं आपसे कहूँ कि आप बेवकूफी कर रहे हैं। प्रेम वेम सब झूठी बात है। आप चपा को चाहते हैं, तो ले लीजिये। वह क्या ऐसी कोई बड़ी बादशाह की बेगम है! आप एक बार उससे कहे कि मैं तुम्हें चाहता हूँ वह आपको मिल जाएगी। पर मुझे आश्चर्य तो यही है कि आज ५ साल से आप उसके यहाँ बेनागा रोज जाते हैं और अभी तक आपको वह मिली नही है।"

"मैं चंपा के शरीर को नही चाहता मुझे उसका दिल चाहिये।"

"दिल! आप दिल नही चाहते। अपने आपको धोखा दे रहे हैं। उसी धोखे मे ५ साल से घुल रहे हैं। उसी धोखे में रहियेगा तो सारी जिंदगी घुलती जाएगी। आप भ्रम में हैं। आपको चंपा का शरीर चाहिये। आज शाम को जाइये और उसे माँग लीजिये। वह आपको १०-२० चाँदी के टुकड़ों मे मिल जायगा।"

इतना कहकर महमूद तो चला गया पर किशोर के दिल में जल-जला पैदा कर गया। उसने निश्चय कर लिया कि आज शाम को मुझे जो कुछ चाहिये वह मैं माँग लूँगा। वह शाम को चंपा के घर गया। पर दरवाजे पर ही नौकर ने उससे कहा कि चपाबाई आज मिल नहीं सकतीं। किशोर ने अंदर संदेश भेजा। नौकर से कहा कि चपा से कहना कि टौनहाल की प्रदर्शिनी मे घूमने के लिए चलना है। नौकर अदर से जवाब ले आया कि चपा की तबियत आज खराब है। वह नहीं आ सकती।

हारा, मारा, निराश किशोर अकेले ही प्रदर्शिनी देखने गया। आज जालौन की आतशबाजी थी। पर किशोर के मस्तक में आग लगी थी। उसका हृदय जल रहा था।

आध घंटे के बाद किशोर ने देखा कि सेठ भीखमल के हाथ में हाथ डालकर चंपाबाई प्रदर्शिनी में घूम रही है। उसके मस्तक की आग भभक उठी। वह दौड़ा चंपा के पास आया। चंपा ने उसे दूर से देख लिया। वह भी सेठ को छोड़कर जरा दूर पर किशोर से मिली। किशोर ने जोर से पूछा "चंपा, क्या मेरे ऊपर तुम बिल्कुल दया न करोगी।"

"किशोर बाबू!" चंपा ने भी उतने ही जोर से कहा "सेठ जी ने आज एक दिन उनके साथ घूमने के लिये ५००) देने का वादा किया है। आपके साथ घूमने पर थोड़े ही कुछ मिलता। और सचमुच मेरी तबियत खराब थी पर ५००) के लिये चली आई। अच्छा नमस्ते।"

चंपा तो चली गई। अच्छा ही किया। नहीं तो पास की ईंट जरूर उसका सर फोड़ डालती। किशोर को चक्कर आने लगा। जिस ईंट को उठाकर चंपा को मारने की इच्छा उसे होती थी उसी पर बैठ गया। सिर पर हाथ धर कर रोने लगा।

इतने में न मालूम कहाँ से किशोरी वहाँ आ पहुँची। शायद वह सब बातें दूर से देख रही थी। किशोर का हाथ अपने हाथ मे लेकर उसने पूछा "किशोर बाबू, उठिये।"।

किशोर ने एक बार किशोरी की ओर देखा। कुछ निश्चय किया और पूछा।

"किशोरी मेरे साथ प्रदर्शिनी मे घूमोगी।"

"जैसी आपकी इच्छा।" किशोरी ने उत्तर दिया।

प्रदर्शिनी देखकर लौटते समय किशोर ने फिर किशोरी से पूछा—

"किशोरी मुझसे शादी करोगी।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

किशोरी के काले-साँवले गाल पर भी किशोर को गुलाबी छटा दिखाई दी।

आग ! पानी !!

मित्रमण्डली के विषय में मैं अपने को बड़ा भाग्यवान समझता हूँ। दिनभर जीवनकलह से जूझने के बाद शाम को चार मित्रों के बीच बैठकर गपशप लड़ाने में जो आनन्द आता है वह वर्णन का विषय नहीं उसके लिए तो स्वानुभव की आवश्यकता है। दिन भर के सारे श्रम का परिहार उस डेढ़ दो घटे के हास्यविनोद से हो जाता है।

हाँ, तो जिस समय की बात मैं कहना चाहता हूँ उस समय ऐसी गोष्ठी में हमें और मजा आता था। गर्मी के दिन थे और नरेन्द्र का एम० ए० का इम्तहान खतम हो चुका था। उसने घोषणा की थी कि इम्तहान के बाद मैं विधवा विवाह करूँगा। इस घोषणा ने विहार के भूकम्प का काम किया था। सारा मुहल्ला 'क्वेटा' हो रहा था। अपने को सामाजिक धर्म और नीति के जिम्मेदार समझनेवाले पं० विद्याधरजी ने गला फाड़कर नरेन्द्र से कह दिया था कि अगर तुम विधवा विवाह करोगे तो जातिच्युत कर दिये जाओगे। समाज धारणा के लिए समाज-नियमों का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है।

नरेन्द्र हमारे मित्रमण्डल का प्रधान सदस्य था। इसी कारण हम लोगों में भी काफी हलचल थी। उस हलचल का एक कारण और था।

हजार कोशिश करने पर भी उसने अपनी भावी पत्नी का नाम हमें नहीं बतलाया। अपने चारों तरफ उसने एक गूढ वायुमण्डल बना लिया था। वह हम लोगों की उत्कण्ठा को खींच रहा है।

हमारी बैठक का कोई स्थान निश्चित नहीं था। जहाँ हम चारों मिल जाते वहीं गप शुरू हो जाती थी। गर्मी के दिनों में प्रायः हम लोगों का अड्डा दशाश्वमेध घाट की किसी मढी पर लगता। आज भी घूम घामकर हम लोग घाट पर पहुँचे। बातचीत का विषय था 'ज्ञानान्मुक्तिः'। शाम हो चली थी। नरेन्द्र ज्ञान का महत्व बतलाता जाता था पर वीरेन्द्र कहता था कि नहीं, ज्ञान से अशाति का क्षेत्र बढता जाता है। आदमी जितना अधिक ज्ञानी होता है उतना ही अधिक वह अपने जीवन मे कुछ कमी अनुभव करने लगता है।

इतने मे क्या हुआ कि घाट पर की बड़ी सर्चलाइट की बिजली की बत्ती जल उठी। गंगाजी के जल पर चाँदी के चूर नाचने लगे।

नरेन्द्र ने कहा—

"देखो, ज्ञानदीप सारे अज्ञानान्धकार का इसी प्रकार नाश करता है।"

"हाँ, और इस ज्ञानदीप को जलानेवाली बिजली कितने आदमियों के प्राण लेती है? अभी उस दिन ट्रेनिंग कालेज का एक छात्र बिजली का करेण्ट लगने से मर गया, याद है? इस लाइट का फल हलका नहीं होता, भारी होता है—"लाइट चार्जेज आर हेवी।"

इस पर हम सब खूब हँसे, पर इसके बाद बातचीत का सिलसिला न बँध सका। घाट पर कुलफी मलाई खा तथा चौक मे रामप्रसाद की ठण्ढाई पीकर हम लोग घर लौटे।

* * *

मित्रमण्डली में बैठने के सिवा मुझे एक और शौक था। रोज

सवेरे गंगाजी में कम से कम एक घण्टा तैरे बिना मैं नहीं रहता था। घाट पर मैं एक भस्म त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण को देखता। वे ब्राह्मण देवता रोज कम से कम दो घण्टे तख्ते पर पूजा पाठ करते हुए बैठे रहते। आज मुझे मालूम हुआ कि उन्ही का नाम पण्डित विद्याधर जी है। वे जाति के सरपंच थे। विधवा विवाह करने पर नरेन्द्र को जातिच्युत करने की धमकी उन्होंने ही दी थी।

किसी अंग्रेज कवि ने कहा है कि दुनिया ऊपर से जैसी दिखती है वैसी नही होती। मुझे भी दुनिया के बारेमें कुछ कुछ ऐसा ही अनुभव होने लगा है। ईश्वर का अस्तित्व माननेवाले लोगो को प्रायः पाप का भय ही नही। वे सोचते हैं कि ईश्वर की थोड़ी खुशामद करने से वह उन्हें सब पापों से मुक्त कर देगा। ऐसा जान पडता है कि ईश्वर को न माननेवाले लोग ही अधिक नीतिमान होते हैं। उन्हे निश्चय रहता है कि जिस प्रकार जान या अजान मे हाथ आग पर पड़ जाय तो वह जले बिना न रहेगा उसी प्रकार हमारे किये हुए कर्मों का फल हमे भोगना ही पड़ेगा। मानवता के प्रति उत्तर-दायित्व का भाव उनमें अधिक रहता है। मेरी यह धारणा यह देखकर और भी दृढ़ हो जाती है कि पण्डित विद्याधरजी जैसे अपने को महा-पण्डित कहलाने वाले लोग भी सवेरे गगाजी मे खड़े होकर

ॐ सूर्यश्च मामन्युश्चमन्युपतयश्चमन्युकृतेभ्यः पापेभ्योरक्षंतां। यद्रा-त्र्यापापमकार्षममनसावाचाहस्ताभ्यांपद्भ्यामुदरेणशिश्नारात्रिस्तदवलुंपतु।

इत्यादि—

कहकर प्रायश्चित्त करते हैं। पर इसके लिये मैं पण्डित विद्याधरजी को दोष नहीं देता था। मुझे दया आती थी उनकी रूढ़िप्रिय अज्ञानी स्थिति पर।

*　　*　　*

आज मुझे अपने दोस्त की एक चिट्ठी मिली है। चिट्ठी डाक से

आने पर मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि मेरे वे दोस्त बनारस मे ही रहते हैं। मैं जानता था कि उन पर भारी सकट आ पड़ा है। मेरी स्त्री ने सब बातें मुझे कभी बता दी थी। बात यह थी कि मेरे मित्र केशव की बहन विमला बाल-विधवा थी। समाज के किसी पापी ने उसे फुसलाया। सासारिक सुखों से विमुख अबोध बालिका उसके भुलावे मे आ गयी। जो न होना चाहिये था वह होगया। करनेवाला तो कर धर के अलग हो गया, सकट आ पडा उस दैव की मारी बालिका और बेचारे केशव के परिवार पर। लेकिन उस सकट के मूल में पण्डित विद्याधर जी होंगे यह मै स्वप्न मे भी न सोचता था। उनके भस्म और त्रिपुण्ड के परदे मे क्या क्या छिपा था इसका भेद आज मुझ पर खुला। उनकी लम्बी दाढ़ी के जगल मे कैसे कैसे हिंस्र जन्तु छिपे थे यह आज मेरे सामने आया। रोज सबेरे गगा जी मे खड़े होकर उन्हे प्रायश्चित्त करने की क्या आवश्यकता होती थी उसका अर्थ आज मुझे मालूम हुआ। और उसके साथ साथ मेरे परम मित्र नरेन्द्र का विशाल हृदयता तथा उसकी त्यागभावना की कल्पना भी मुझे आज ही हुई। पाठकों की जानकारी के लिये वह चिट्ठी मैं अविकल नीचे देता हूँ—

"नमस्ते, तुम्हे आज यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम पढ़कर अचरज में आ जाओगे। हम लोग एक ही जगह रहते हैं पर शायद तुम नही जानते कि मेरे मुँह पर कलंक लगा है। मुँह खोलकर मैं समाज मे नही आ सकता, उसके विषैले वाग्बाण नही सह सकता। इसी से मुँह ढाके घर की एक कोठरी मे बैठे रहना ही ठीक जान पड़ा। पर आज से मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। तुम्हारे मित्र भाई नरेन्द्र ने मुझे इस संकट से मुक्त करने का आश्वासन दिया है। इसी महीने मे विमला से शादी करने की उसने स्वीकृति दे दी है। लेकिन मेरा मन नहीं मानता। मुझे ऐसा मालूम होता है कि विमला के पापों का बोझ मैं नरेन्द्र के सिर पर डाल रहा हूँ। उस पाप का भूत मेरे सामने नाचने

लगता है। वह कहता है कि नरेन्द्र की सहृदयता का तुम अनुचित लाभ उठा रहे हो। जिस नीच ने यह कुकर्म किया है उसे खींच लाओ आगे। पर मैं डरता हुं। समाज की व्याघ्र दृष्टि के सामने विमला की इज्जत रूपी गाय को रखने की हिम्मत मुझमें नहीं है। "और कर अपराध कोउ और पाव फल भोग कोउ" क्या समाज का यही नियम है? मैं आज तुम्हें उस आदमी का नाम बताऊँगा। सुनो— बिमला रोज कथा सुनने पण्डित विद्याधर जी के यहाँ जाती थी। बस इतना ही लिख सकता हूँ, आगे की कथा का स्वयं अनुमान कर लो। हाँ, तो मैं नरेन्द्र को स्वार्थवश फसा तो नहीं रहा हूँ? अपने पापों से मुक्त होने के लिये उसकी बलि तो नहीं चढ़ा रहा हूँ? अपनी राय निस्संकोच होकर लिखो।"

चिट्ठी पढ़कर मेरा सिर चक्कर खाने लगा। यह है आज अपने समाज का नग्नचित्र। इतने में टेलीफोन की घण्टी बजी। मैंने रिसीवर कान में लगाया।

"हलो, हलो। आप कहाँ से बोल रहे हैं?"

"आफिस से। हाँ, आप हैं? नमस्कार!"

"नमस्कार, कहिये क्या आज्ञा है?"

"परसों से लखनऊ कांग्रेस का अधिवेशन शुरू होगा। आफिस की तरफ से आपको हम भेजना चाहते हैं। आज शाम की गाड़ी से ही चले जाइये।"

"बहुत अच्छा।"

उधर से रिसीवर रखे जाने की आवाज मैंने सुनी। मैंने भी रख दिया।

विचार, विचार, विचार—विचारों के पहाड़ के नीचे उस दिन मैं दब रहा था। इतने में अचानक बाहर जाने का हुक्म मिला। मैंने बेग में अपना आवश्यक सामान ले लिया और स्टेशन की ओर लपका। सोच विचार ने अब भी मेरा पीछा न छोड़ा था। ढोंग और दम्भ से मैं

चिढ़ गया था। किसी तरह टिकट लेकर मैं गाड़ी पर सवार हुआ। गाड़ी ने सीटी बजायी और वह चल दी। प्लेटफार्म के आखिर में लटकती बालटियों की एक कतार थी। उन पर लाल वार्निश लगी थी और सफेद रंग से लिखा था—

फायर! फायर!

मेरे अन्तर्मन में भी प्रतिध्वनि उठी—

आग! आग!

और मस्तिष्क ने मुँह को तार दिया। उन बालटियों में भरा था पानी। मुँह कह रहा था—

पानी! पानी!

आग, आग! पानी, पानी। बाहर ढोंग और दम्भ की झूठी आग, भीतर ठंढा और स्वाभाविक पानी। बिमला, नरेन्द्र, विद्याधर पंडित सब मेरे मानस-नेत्रों के चारों ओर नाच रहे थे और गा भी रहे थे।

"आग, आग! पानी, पानी!"

गाड़ी मुझे लिये दिये लखनऊ की ओर सरपट भागी जा रही थी।

गंगा-यमुना

अगर आप रेलगाड़ी पर कहीं दूर का सफर करते हों और रास्ते में किसी स्टेशन पर आपका कोई दोस्त मिल जाय तो आपको कितना आनन्द होगा। और कहीं एक के बदले दो दोस्त मिल गये तो, तब तो फिर आपको इतनी खुशी होगी कि शायद उतनी खुशी मिनिस्ट्री मिलने पर विजयानगरम् के महाराज को भी न हुई होगी।

मैं कानपुर से बनारस लौट रहा था। करीब दो साल के बाद अपने जन्म-नगर को जा रहा था। फतहपुर स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई और ठीक मेरे डब्बे के सामने खड़ा था मेरा बचपन का दोस्त और पड़ोसी गरीबदास। रेलगाड़ी मे अकेले सफर करना बहुत कठिन काम है। गरीबदास को पा मैं फूला न समाया। किसी तरह होल्डाल, सूटकेस, टिफिन बाक्स और सुराही ठीक रखाकर, मजदूर को पैसे दे बिदा किया। गाड़ी ने सीटी दी और वह खुल ही रही थी कि एक मुसलमान सज्जन हाँफते हाँफते अपनी तुर्की टोपी सँभालते हुए दरवाजा खोलकर डब्बे मे घुसे। मैंने उन्हे घूरकर देखा।

"ओ, हो, आप हैं जनाब ताहिर हुसेन!" एक दोस्त को पाकर मैं फूला नहीं समाया था अब तो दो दो हो गये। पर जल्दी ही मेरी

खुशी का सूरज समुन्दर मे डूब गया। ताहिरहुसेन ने गरीबदास की ओर देखा उनके तेवर चढ गये मानो साढ़े १२ बजे हल जोतकर लौटने वाले किसान से कोई तुरत ही बैलों को पानी पिलाने को कह दे। इस अंदाज से उन्होंने अपनी शेरवानी के बटन लगाये कि अगर ट्रेन चलती न होती तो शायद वे उतरकर दूसरे डब्बे मे चले जाते। और गरीबदास। उन्होंने कपार पर हाथ फेर कर देखा कि चदन उंदन ठीक तो लगा है न। फिर सर फेरकर ऐसे बैठ गये मानो ताहिर हुसेन को देखा ही न हो।

मैं अचम्भे में पड़ गया। दो साल पूर्व जब मैं बनारस मे था उस समय दोनों एक दूसरे के गले मे बाँहे डाले मुझे घूमने के लिए बुलाने आते और आज, दोनों को एक दूसरे का देखना नागवार गुजर रहा था। मैं सोचने लगा कि आखिर बात क्या है।

बात यह थी कि असेम्बली के चुनाव मे हिंदू-सभा के दफ्तर मे गरीबदास को काम मिला था और ताहिर हुसेन मुसलिम लीग के दफ्तर में कलम घिस रहे थे। चुनाव का काम खतम हो जाने से दोनों बनारस लौट रहे थे, पर साम्प्रदायिक भावों का भूत अभी सिर से नहीं उतरा था। गरीबदास समझ रहे थे कि मैं भाई परमानन्द हो गया और ताहिर हुसेन को मालूम होता था मानो वे जिन्ना के मुन्ना ही हैं।

जो बात मैंने सोची थी वह न हुई। मैंने सोचा था कि चलो बनारस तक अब गप्पे लड़ाते लड़ाते समय कट जायगा। पर यहाँ तो ताहिर हुसेन आनेवाले खेत देखते थे और गरीबदास बेचारा भागनेवाले पेडों को गिनता था। मैंने इसी मे अपनी खैरियत समझी, नहीं तो कहीं लेकचरबाजी और उसके बाद घूसेबाजी शुरू होती और मेरा बीच में कचूमर निकल जाता।

आखिर मुझसे न रहा गया। मैंने बातें छेड़ ही दीं।

"कहो ताहिर भाई, कैसा रहा चुनाव ?"

"आपने तो सब मुसलिम सीटें काबिज कर लीं ?" मेरा गाधा टोपी की ओर देखकर जिन्ना के जेनरल ने गोली चलायी।

मैं जवाब ही क्या देता। कौआ जब व्रण पर चोंच चलाता है तो बैल बेचारा कर ही क्या सकता है। मुझे मालूम ही था कि कांग्रेस के मुसलमानों को कैसी कामयाबी हो रही है।

"और जनाब जानते हैं।" कनखियों से गरीबदास की ओर ताकते और मुस्कराते हुए ताहिर हुसेन ने बारूद भरने का काम शुरू किया। हिन्दू सभा के सबके सब उम्मेदवार जीत जायँगे।"

बारूद ने अपना काम किया। गरीबदास के मुँह की तोप का मुँह धड़ से खुला। "चुप रहो, बडे आये हैं अरबिस्तान से। यह देश हिन्दुओं का है, *मुसलमानों का कुछ भी काम नहीं यहाँ। हिन्दू ही* भारत का उद्धार कर सकते हैं।"

"और आप जनाब, मुसलमानों के जूते चाहिये" मेरी ओर देखकर फरमाया। "जो लोग भारत को अपनी मातृभूमि नहीं मानते उनकी खुशामद कर करके आप हिन्दू हितों की हत्या कर रहे हैं।" गाड़ी चलती रही।

मैं सन्न रह गया। मैं यह न समझता था कि हिन्दू सभा के बम गोले मेरे ऊपर गिरेंगे। पर वे गिरे और अचानक गिरे। बम गिरने के बाद सर्वत्र श्मशान शांति हो जाती है। मानो इसीलिये मुसलिम लीग ने कुरान लेकर पश्चिम की ओर मुँह किया। बेचारी हिन्दू सभा पुराण हाथ में लेकर पूर्व की ओर सूर्य को प्रणाम करने लगी।

गाड़ी में और भी लोग थे। कोई पानी पी रहा था तो कोई 'गीता का डंका' आलम में बजा रहा था। मैं अन्तर्मुख हो गया। सोचता था कि क्या हिन्दू मुसलमान एक होकर भारत की आजादी के लिये नहीं लड़ सकते! आजादी के लिये जाति धर्म का प्रश्न ही क्यों सामने

आता है। आजादी आदमी के लिये है। यह थोड़े ही है कि वह सिर्फ हिन्दुओ को ही सुखी करेगी और मुसलमान वैसे ही रहेंगे।

एक छोटा सा स्टेशन आया। गाडी वहाँ खडी न होती थी। स्टेशन पार कर गाडी जाने लगी। उसकी रफ्तार और तेज हो गयी। इसके बाद खटखट की आवाज हुई। मैंने देखा कि स्टेशन की डबल लाइन समाप्त होकर गाड़ी सिंगल लाइन पर जा रही थी। क्या भारतीय राजनीति की गाडी भी इसी तरह रुख बदलकर इकहरी लाइन पर चलेगी? जी में बराबर यह प्रश्न उठता रहा। थोडी देर में गाडी इलाहाबाद स्टेशन पर पहुँची। हम तीनों को प्यास लगी थी। टोंटीदार लोटा खिड़की के बाहर निकालकर मियाँ साहब चिल्लाये "ओ भिश्ती।"

गरीबदास ने भी कमण्डल निकाला और चन्दन के नीचे से आवाज निकली—"पानी पांडे! ओ पानी पाडे!"

मैं भी अपना लोटा लेकर नीचे उतरा। बम्बे पर जाकर मिट्टी से लोटा साफ किया और स्वच्छ जल भर कर डब्बे मे आया। देखता क्या हूँ कि हिन्दू पानी और मुसलमान पानी आपस में लड रहे थे।

गरीबदास ने पूछा—"यह गगाजी का पानी है न।"

"नाहीं भैया ई जमुनाजी का पानी है।" पाँडे ने जवाब दिया।

"हाँ, हाँ, हम जमुनाजी का पानी पियेंगे। शाहजहाँ जमुनाजी का पानी ही पीते थे।"—ताहिर हुसेन बोले।

हमारे डब्बे में एक बीमा कम्पनी के एजेण्ट भी अपने हैंडबेग के साथ बैठे थे। बड़े मसखरे मालूम पड़ते थे। उन्होंने ताहिर हुसेन से कहा—

"मिस्टर आप उतर जाइये, दूसरी गाड़ी विन्ध्याचल होकर बनारस जायगी उसी पर चढकर चले आइयेगा।"

"क्यों? क्यों?" ताहिर हुसेन ने अधीर होकर पूछा।

"देखिये जंघई होकर जानेवाली गाड़ी गंगाजी के पुल पर से जाती है और विध्याचल होकर जानेवाली जमुनाजी के पुल पर से।"

मियाँ ताहिर हुसेन सोच मे पड़े। मुझे डर लगा कि कही ये सच-मुच उतर न जायँ। पर वे नही उतरे। शायद उनकी आँखों के सामने जंघई के लड्डू आ गये हों।

गंगा-जमुना की चर्चा से मुझे एक बात याद हो आयी। हिमालय से दोनों नदियाँ चलती हैं और प्रयाग मे आकर मिलती हैं, फिर भी संगम पर दोनों के बीच में रंग की एक लकीर दिखती ही है। क्या हिन्दू और मुसलमानों की पूरी एकता सम्भव नही है? क्या वैसी ही लकीर उन दोनों के बीच मे बनी रहेगी?

"नही, नही!" कोई मेरे कान मे चिल्लाया।

मेरी आँखों के सामने बरसात का दृश्य आ गया। बरसात में गंगा-जमुना दोनो का पानी पीला हो जाता है। विदेशी साम्राज्यवाद के शोषण से जब भारत पर संकटों की बाढ आवेगी, रोटी का सवाल जब टेढ़ा हो जायगा तभी साम्प्रदायिकता का अन्त होगा। हिन्दू मुसलमानों के बीच की लकीर मिट जायगी।

घिरा हुआ किला

मानव-प्रकृति बडी विचित्र होती है। वर्तमान स्थिति मे उसे कभी सन्तोष नहीं होता, वह सदा परिवर्तन चाहती है। किसी ने कहा कि 'कन्सिस्टेन्सी इज दि वर्चू आफ ऐन ऐस।' यह उक्ति मानव-स्वभाव के परिवर्तन—प्रेम का बहुत ही अच्छी तरह दिग्दर्शन करती है। हॉ, कुछ ऐसे भी आदमी होते हैं जिनके कान उनकी आयु के साथ साथ बढते हैं और किसी प्रकार के परिवर्तन की उन्हे आवश्यकता नहीं होती। पर उन्हे अपवाद स्वरूप ही समझना चाहिये।

मैं भी इधर एकदम मशीन हो गया था, परिवर्तन चाहता था पर कोई उपाय नही सूझता था। जैसे अभी हाल मे पार्लमेण्ट की सभा मे सर लैम्बर्ट वार्ड ने काग्रेस और मंत्रित्व के बारे में कहा है कि सरकार चाहती है काग्रेस दल मन्त्रित्व स्वीकार करे पर उसे कोई उपाय नहीं सूझता, ठीक यही मेरी स्थिति हो गयी थी। ठीक कहने की जरूरत इसलिये हुई कि मेरी स्थिति सचमुच ही वैसी हो गयी थी और ब्रिटिश सरकार के बारे मे हम भारतीयों को यह अनुभव है कि उसकी बात और करनी मे दो ध्रुवों का अन्तर होता है।

इस तरह मैं 'ऐस' बना जा रहा था, पेट के पीछे। पेट के पीछे पीठ होती है पर मै अपने पेट के पीछे मशीन बना जा रहा था। मेरा

जीवन चक्की की तरह गोल घूमा करता था। मैं बीमार रहूँ चाहे मरता रहूँ, आफिस, घर, खाना, सोना, जागना, फिर आफिस—यही क्रम रोज चलता था। जीवन में कुछ भी नवीनता न थी। रोज मन्त्र जपा करता 'हे ईश्वर! भारत मे जल्दी साम्यवाद ला दे' पर बाद मे खयाल आता कि साम्यवाद तो डण्डा लिये ईश्वर के पीछे लगा है। फिर ईश्वर क्यों साम्यवाद को यहाँ लावेगा?

मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो मैं गधा कदापि न बना रहूँगा। सो पूरे डेढ़ महीने की छुट्टी की दरखास्त दे दी और लड़ झगड़ कर उसे मंजूर भी करा लिया और चल पड़ा घुमक्कड़ी के लिये।

* * *

मेरा पहला मुकाम इलाहाबाद में सुरेन्द्र के घर पर हुआ। १९२८ में मैट्रिक पास करने के बाद वह कांग्रेस के सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे कूद पड़ा था और अब तक बराबर काग्रेस का कार्यकर्ता रहा। बीच मे दो बार छः छः महीने जेल भी काट आया था। अब वही काग्रेस कमेटी के दफ्तर में ३५) माहवार की नौकरी करता है।

मैं जब पहुँचा उस समय उसके कमरे की हालत अजीब थी। बीच में बेत की कुर्सी पड़ी थी। उसी में १०—२० कपड़े ठूंस दिये गये थे। पास ही खाट पर दो चार अखबार और मासिक पत्र बिखरे पड़े थे। बाहर आँगन मे बाल्टी के पास गीली धोती और साबुनदानी धरी थी। कमरे भर बीड़ी के छोटे-छोटे जले हुए टुकड़े और कुछ जली हुई दियासलाइयॉ पड़ी हुई थी। ताक पर मिट्टी की आध इंच मोटी तह जमी थी। कमरे के एक कोने मे आठ दस दिन का कूड़ा करकट सरका दिया गया था। जमीन पर कई जगह फटा टाट बिछा था जिस पर चलने से काफी गर्द उडती थी। और सुरेन्द्र? दाढ़ी पन्द्रह दिन की बनी हुई मालूम होती थी और जनाब 'ग्लिम्प्सेस आफ वर्ल्ड हिस्ट्री' पढ़ रहे थे।

मेरे पहुँचते ही सुरेन्द्र ने पूछा। क्यों जी गाडी में बैठने से तुम्हारा जी उकताया नहीं ? रेल की यात्रा सामने आते ही मैं तो 'अब दूर से ही नमस्कार करता हूँ। दिसम्बर में फैजपुर, अप्रैल में दिल्ली गया था— अब मैं थक गया हूँ।'

मैंने दूसरी ही ट्रेन चला दी—

'यह सब क्या इन्तजाम है ? स्टोव पर कल शाम के बर्तन वैसे ही पडे हैं।' मैंने पूछा।

'क्या करूँ ? उपाय क्या है!' यह कहकर सुरेन्द्र ने अपना दुखड़ा सुनाना शुरू कर दिया। मानसिक, शारीरिक और सामाजिक आवश्यकताओं के लिये गृहिणी लाने की अब उसे सख्त जरूरत थी पर भारत में पहले ही आर्थिक अवस्था और वैवाहिक अवस्था में मेल नहीं है। २७—२८ वर्ष की अवस्था मे मनुष्य आर्थिक दृष्टि से स्थिर होता है। वैवाहिक जीवन की आवश्यकता २० या २२ वर्ष की अवस्था से ही-शुरू हो जाती है। उसी मे बेकारी, गरीबी इत्यादि कारणों से और भी हालत बिगड रही है। देश का सामाजिक जीवन अव्यवस्थित हो गया है।

* * *

सुरेन्द्र ठहरा काग्रेसी। काग्रेस की पुकार चाहे जब हो, वह मैदाने जग मे अवश्य कूद पडेगा। थोडा-थोड़ा वह आदर्शवादी भी था। पढी लिखी, कमानेवाली; सिविल मैरेज के लिये तैयार पत्नी उसे चाहिये थी। देश के लिए अपने पति का त्याग सहन करने की शक्ति भी उसमें होना जरूरी था। ऐसी पत्नी कैसे मिले ? यही सवाल था और इसी के लिये वह राह देख रहा था।

तात्पर्य यह कि उसका जीवन व्यवस्थित होने के लिये उसे विवाह की अत्यन्त आवश्यकता थी।

* * *

मेरी दूसरी छलाँग कानपुर में सुरेन्द्र के बड़े भाई वीरेन्द्र के घर पर पड़ी। सात वर्ष पहले वीरेन्द्र की शादी मे मैं उससे मिला था, उसके बाद यही अब मिल रहा था। मैं सोचता था कि मेरे जाने से वीरेन्द्र को अवश्य खुशी होगी और उसकी अचानक खुशी देखने के लिये मैंने अपने कानपुर पहुँचने की सूचना भी उसे पहले से न दी थी। पर मैं जब पहुँचा उस समय वीरेन्द्रजी घर पर नहीं थे। पता लगा कि अस्पताल गये हैं, बड़े लड़के को दिखाने के लिये। न मालूम उसे क्या-क्या रोग हो रहे थे। उसकी पत्नी कमरे में खाट पर पड़ी थी। क्षीण आवाज से उसने मेरा स्वागत किया। उसे भी दो तीन साल से हलका बुखार रहता था। फिर भी खाट पर पड़े पड़े उसने मेरे लिये नौकर से चाय पानी का इन्तजाम करा दिया।

ठीक एक घण्टे बाद वीरेन्द्र आया। मुझे देखकर उसे खुशी जरूर हुई पर वह घरेलू झंझटों से त्रस्त था। स्त्री बीमार थी ही। दो लड़के और दो लड़कियाँ थीं उनकी बीमारिया भी चलती ही थी। आज रामू का सिर दुखता था तो कल शामू को १०५ डिग्री बुखार हो आता था। महीने भर पर ६० चादी के टुकड़े तनखाह मे मिलते थे, उसमे से १०-१२ तो डाक्टर के बिल में चले जाते थे। किसी तरह घर गिरस्ती चलती थी।

मैंने उससे कहा "चलो कही छुट्टी लेकर घूमने।" उसने कहा—"बड़े भागवान हो तुम, मेरे तो पैर घर के बाहर निकलते ही नहीं। निकलूँ तो कैसे निकलूँ? रामू श्यामू जान खा रहे हैं कि बाबू जी एक बार रेलगाड़ी का सफर करा दो। पहले तो छुट्टी मिलना मुश्किल है। मिल भी गयी तो साढ़े तीन टिकट कटाने होंगे। धन्यवाद है रेल कम्पनी को कि पेट के बच्चे का टिकट नही लेती।"

मैं सन्न हो गया। वीरेन्द्र की पत्नी के लिये मन मे दया आयी पर क्या करता! सामाजिक और नैतिक कानूनों से यह जायज था। जो कुछ हो, मैं तो इसे अत्याचार और व्यभिचार ही मानता हूँ।

मैंने सुरेन्द्र की हालत उसे सुनायी तो उसने कहा "भाई उसे कभी दो शादी कभी न करे। दुनिया मे अगर सबसे अधिक मूर्खता का काम कोई है तो वह ब्याह करना है। मैं महामूर्ख, गधा था जो मैंने शादी की। अब पछता रहा हूँ पर "अब पछताये होत क्या, चिड़िया चुग गई खेत" जो किया उसका फल भोगना ही पडेगा।"

उसी शाम को मैं लखनऊ के लिये रवाना हो गया। गाड़ी मे मेरी आँखों के सामने बराबर दो दृश्य आते थे। सुरेन्द्र का कमरा और वीरेन्द्र का कमरा। लखनऊ स्टेशन पर उतरकर मैं ताँगे पर सवार हुआ। मैं तागेवाले के पास बैठा था। पीछे युनिवर्सिटी के दो छात्र बैठे थे। दो बिल्लियाँ कभी एक साथ चुप नहीं बैठ सकतीं। दो 'कालेज स्टूडेण्टो' का भी वही हाल रहता है। उनकी बहस चल रही थी। मैं अपने ही सोच विचार मे पड़ा था। सुरेन्द्र की बात ठीक है या वीरेन्द्र की। बहुत सोचा पर उत्तर न मिला। इसलिये अब उन 'बैचलरों' की बातें सुनने लगा। पहले तो सोचा था कि कालेज स्टूडेन्ट समाज-वाद पर ही वादविवाद करते होंगे पर बीच में दो चार बार विवाह शब्द कान मे घुसा था इसीलिये उन लोगों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। वादविवाद का विषय था 'विवाह का उद्देश्य'। उनमे से एक जो युक्तप्रात का रहनेवाला मालूम पड़ता था, कहता था कि विवाह लड़के की ओर से शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति और लड़की की ओर से आर्थिक अभाव की पूर्ति के लिये होता है। सन्तति का उद्देश्य उसमें कभी नहीं होता। विवाह 'मजा' के लिये है, 'प्रजा' के लिये नही। "इट इज फार रिक्रियेशन नाट फार प्रोक्रियेशन"। दूसरे जो बिहारी बाबू थे, ठीक इसका उलटा कहते थे।

मैंने उनसे पूछा "कहिये मित्रों, आप क्या पढते हैं।"

जवाब मिला कि हम दोनों एम० ए० की पढ़ाई पूरी कर रहे हैं।

मैंने दूसरा सवाल किया—"आप लोगों का ब्याह हो चुका है।"

उत्तर मिला—नहीं।

"तब तो आप ब्रैचेलर्स आफ आर्टस् को विवाह के उद्देश्यवाले विषय् पर वादविवाद करने का अवश्य अधिकार है।"

इसके बाद मैं फिर अपने विचार में मग्न हुआ। सुरेन्द्र वीरेन्द्र को याद कर मेरा हृदय बार बार कहता था—

'दो भाई—और इतना अन्तर।'

हजरतगज मे ताँगे के पास एक अखबार बेचनेवाला लड़का आकर चिल्लाने लगा। मैंने उससे 'माई मैगेजीन' खरीदा और उलट-पुलटकर देखने लगा। हास्य-विनोद के कालम मे एक वाक्य पर अचानक दृष्टि पड़ी। उसमे लिखा था—

"विवाह-बन्धन एक घिरा हुआ किला है। जो उसके बाहर रहते हैं वे उसमें घुसना चाहते हैं और जो उसके अन्दर रहते हैं वे बाहर निकलने की कोशिश करते हैं।"

कोई दरवाजा खटखटा रहा था।

मैंने पूछा 'कौन है ?'

जवाब मिला 'तारवाला। वकील साहब का तार है।'

मैंने वकील साहब को बुलाया। उन्होंने दस्तखत करके तार का लिफाफा खोला। मैंने देखा, पीला कागज कह रहा था—मुसलमान एक हिन्दू लड़की भगा लाये हैं। फौरन आइये।

मैंने वकील साहब से कहा—"दोस्त, तुम अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति फजूल ऐसी बातों मे खर्च कर रहे हो। तुममें सघटन करने की शक्ति है, सामाजिक कार्य करने का शौक है, लिखने की चतुरता है, बोलने की पटुता है। अपने इन गुणों को आजादी हासिल करने में क्यों नहीं लगाते ? आओ, हम लोगो के साथ आजादी के जग मे कूद पडो। छोडो इस पगडण्डी को, हम लोग स्वराज्य-मन्दिर की सड़क पर चलें ......"

वकील साहब बीच मे ही बात काटकर बोले "सड़के शहरों मे होती हैं, पगडण्डियाँ गाँवों मे, हिन्दुस्तान गाँवों का देश है, शहरों का नहीं। शहरों की वैज्ञानिकता हमें नहीं चाहिये, हम गाँवों की आध्यात्मिकता चाहते हैं।"

"वाह, वाह, क्या खूब" मैंने कहा "कचहरी में इसी तरह शब्दों की कसरत करके आप वकालत करते होंगे, तभी तो आपके घर एक भी मवक्किल······"

वकील साहब समझ गये, मैं क्या कहना चाहता था। मेरे मुँह पर उन्होंने हाथ रख दिया और फिर मेरे दोनों हाथ अपने दोनों हाथो मे लेकर लगे जोर जोर से हँसने।

मेरी रोज रोज की बहस का यही 'दि एण्ड' था।

उसी रोज शाम को हरिपुर जाने के लिये वकील साहब तैयार हो गये। मुझसे भी साथ चलने का आग्रह करने लगे। मुझे काम ही क्या। वकील साहब की लीडरी देखने के लिये मैं उनके साथ हो लिया।

* * *

विक्रमपुर को आप छोटा कसबा या बड़ा गाँव कह सकते हैं। बड़ी सुन्दर बस्ती है। मुझे वह स्थान बड़ा पसन्द आया था। छः महीने की कड़ी कैद भुगतने के बाद मैं छूटा था। जेल जाने के बाद राजनीतिक कैदी बीमार न हो तो यह जेल अधिकारियों के लिये बदनामी की बात है। मैं इस नियम का अपवाद कैसे होता। जब तक जेल में रहा बीमार रहा, और बाहर निकला तो बीमारी साथ लिये। इसीलिये स्वास्थ्य सुधारने विक्रमपुर पहुँचा। वकील साहब मेरे पुराने मित्र हैं। अपने गाँव मे उन्होंने एक हिन्दू सभा कायम की थी। बड़ी लगन से काम करते हैं। पर उनका काम मुझे पसन्द नहीं। मैं ठहरा सीधा सादा कांग्रेस का सेवक। इतना ही जानता हूँ और यही बार बार वकील साहब से कहता भी था कि स्वराज्य मिलने पर ये सब छोटे मोटे सुधार अपने आप हो जाँयगे। मुगल-शासन के समय जितना साम्प्रदायिक भाव हममें नही था उससे कही अधिक अब इस पराधी-नता के जमाने मे हैं। क्यों हम आपस मे लड़ते हैं? नही, हम नहीं

लड़ते, कोई हमें लड़ाता है, हमारी अक्ल पर पत्थर पड़ गया है। आओ, आजादी के लिये कमर कसकर शपथ लो।

पर वकील साहब किसी की माननेवाले आदमी थोड़े ही थे। वे कहते,—"पहले धर्म, पीछे स्वराज्य, धर्म नहीं तो स्वराज्य किस काम का?"

अभी अभी एक हफ्ता पहले की बात है। हम दोनों शाम को गाँव की छोटी नदी के किनारे घूमने गये थे। वाद-विवाद के लिये कोई विषय तो था नहीं। प्रकृति-सौन्दर्य का निरीक्षण कर रहे थे। इतने मे एक जगह १८-१९ साल की एक लड़की पड़ी हुई दिखाई दी। कंगाली की मूर्ति थी। चिथड़ों से किसी कदर लाज ढके बेखबर पड़ी थी। मालूम होता था, पेट और पीठ एक हो गये हैं। शायद भूख के मारे मूर्छित हो रही थी। मैं उधर जाने लगा। वकील साहब मेरा कुरता खींचकर मुझे आगे घसीट ले गये। कहा—

"क्या धरा है उधर? भिखारिन तो है।"

इसका गूढ़ अर्थ मैंने नहीं समझा, सो बात नहीं। ब्रह्मा ने बुद्धि बाँटते समय वकील साहब के साथ मुझे भी थोड़ी सी जरूरत दे दी थी। मैंने आँखें निकालीं। वकील साहब सहम गये। मुझे पकड़कर बराबर आगे बढते रहे पर बोले एक शब्द भी नहीं। मैं मन ही मन वकील साहब की इस कुरुचिपूर्ण मनोवृत्ति पर कुढता था। १०—१५ मिनट चलने के बाद हम लोग शिवजी के मन्दिर के पास पहुँचे।

एक फकीर वहाँ बैठा था। उसने अपनी सफेद दाढी लाल रग से रँग ली थी। उसने हम लोगों की ओर इशारा करके कहा—

"अल्ला तुम्हारा भला करे।"

वकील साहब ने आँखें निकालकर उससे मानो कहा कि मैं हिन्दू सभा का नेता हूँ। मुसलमान फकीर मुझसे पैसे की आशा न रखे।

इतने मे हिन्दू साधुओं की मण्डली आयी। उसने घटा घडियाल

जोर जोर से बजाकर "राम के भगत" का जयघोष किया। वकील साहब ने चट जेब में से एकन्नी निकालकर दी और कनखियों से उस मुसलमान फकीर की ओर ताका। साधु मण्डली आगे बढ़ी। हम लोग भी कुछ देर के बाद लौटे। मैं मानस शास्त्र नहीं जानता, नही तो अपने मित्र के इस कार्य का विश्लेषण जरूर करता। पर बारबार आश्चर्य के साथ सोचता था कि वकील साहब के सिद्धात भी क्या हैं ? खैर, उस रात बहुत देरतक मैं यही सोचता रहा, पर जवाब न मिला।

दूसरे दिन सुबह ६ बजे का समय था। हम लोग बैठक में बैठे थे। इतने में वही कल वाली लड़की—दरिद्रता की मूर्ति, वहाँ आयी। मालूम होता था कि वह कुछ बोलना चाहती है पर कमजोरी के कारण मुँह से आवाज न निकलती थी। वह कुछ कह रही थी। पर वकील साहब, उन्होंने उस लड़की की ओर ताका तक नहीं। बात करने की तो बात ही क्या। पीछे रामू नौकर को चिल्लाकर कहा अरे रामू, निकाल तो इसे बाहर, भीख माँगने के अलावा कोई धन्धा ही नहीं है। इन कम्बख्तों को क्या कोई काम नहीं मिलता।

लड़की कुछ जवाब देना चाहती थी पर इतने में रामू आ पहुँचा और उसे दरवाजे के बाहर कर दिया। मैं फिर सोच में पड़ गया। दो मिनट के बाद थूकने के लिए खिड़की के पास गया। देखता हूँ कि वही अभागी लड़की सड़क पर जा रही है और उसके पीछे वही कल वाली साधु मण्डली का मुखिया है। मैं काफी देर तक उन लोगों की ओर देखता रहा। वे जा रहे थे। कहाँ ? यह ईश्वर ही जाने।

हरिपुर जाते समय इसी घटना का पूरा पूरा चित्र फिर मेरी आँखों के सामने नाच रहा था। मैं एक बार वकील साहब की ओर देखता फिर इस घटना की बातों पर विचार करता। वकील साहब के इस विचित्र व्यवहार का क्या कोई उत्तर हो सकता था ? होगा, पर मुझे तो उसने निरुत्तर कर दिया था। हम लोग जब हरिपुर पहुँचे तब शाम हो चली

थी। आर्यसमाज मन्दिर मे पहुॅचने पर पता लगा कि ३—४ दिनों से अब्दुल्ला के घर में एक जवान हिन्दू लड़की दिखाई देने लगी है। वहॉ के हिन्दुओं ने हल्ला मचाया और किसी तरह उसे छुपाकर मन्दिर में ले जाकर रखा। लडकी खुद वहॉ से नहीं हटना चाहती थी। पर एक रात अब्दुल्ला और एक पजाबी के बीच जो बातचीत हो रही थी वह उसने सुन ली। पजाबी लड़कियों की खरीदफरोख्त करनेवाला व्यापारी था। दूसरे ही दिन वह वहॉ से भागी। हिन्दुओं ने उसे आर्यसमाज मन्दिर मे रखा था। इस मामले को लेकर वहॉ के हिन्दू मुसलमानो मे मनोमालिन्य बढने लगा। मुसलमान एक एक करके इकट्ठा होने लगे। वहॉ के कार्यकर्ताओ ने सलाह दी कि हम लोग उस लड़की को लेकर रातोरात विक्रमपुर लौट जायॅ। हमने ऐसा ही किया। घर आकर लडकी के सोने का इन्तजाम कर दिया। हम लोग भी सोये। रात होने से लड़की को देख न सका। पर वह अच्छे कपड़े पहने थी और घूॅघट भी काढ़े थी। शायद ४ दिन मुसलमान के घर रहने के कारण उसे लाज लगने लगी हो। भले घर की लड़की मालूम पड़ती थी।

सुबह ८ बजे हम लोग जगे। जाडे के दिन थे। हम दोनों उस कोठरी में गये जहाँ वह लड़की सो रही थी। वह अभी तक जगी न थी। घूॅघट हट गया था।

यह क्या ?

यह तो वही लड़की है जो उस दिन भीख माँग रही थी और उसके दूसरे दिन हम लोगों के घर भी आयी थी। मैं आश्चर्य से हक्का बक्का हो गया। उस मुसलमान के यहाँ ४—५ रोज उसे भरपेट खाना मिला था। इतने ही दिनों में मानो वह बिलकुल बदल गयी थी।

लड़की जगी। वकील साहब ने उसके हाथ मुॅह धोने का इन्तजाम करा दिया। स्थिर होने के बाद उन्होंने उससे पूछा।

"क्यों री तू उस मुसलमान के पास क्यों गयी थी ?"

बाबूजी क्या करूँ, कोई खाने को नहीं देता था। भूखों मर रही थी। पति ने घर से बाहर निकाल दिया था। एक साधू मिला उसने कहा चल हरिपुर, वहाँ अनाथों का अच्छा इन्तजाम है। मैं नहीं जाना चाहती थी, पर क्या करूँ पेट चण्डाल है, नहीं मानता। सुना था कि आप एक विधवाश्रम के मालिक हैं। सोचा आप कुछ मदद दें तो इस साधू के फेर मे न पड़ूँ। पर आपने तो घर से निकाल बाहर कर दिया। लाचार हो गयी तो उसके साथ हरिपुर चली गयी। अब्दुल्ला ने मुझे अच्छे कपड़े पहनने को दिये। दोनों वक्त भर पेट खाना दिया। हिन्दू मुसलमान मैं नही जानती। मैं पेट जानती हूँ और उसे ईंट पत्थर से भी भरने का उपाय ढूँढती हूँ। जो मुझे खाने को दे उसी का काम करूँगी, उसी के यहाँ रहूँ, जो काम वह कहेगा वही करूँगी। पर अब्दुल्ला मेरे बेचने की बातचीत करने लगा। उसके लिये भी मैं अपने दिल को तैयार कर चुकी थी। पर न मालूम क्यों चली आयी......

मैं सुनता जाता था। मेरी आँखें बहती जाती थी।

कोई दरवाजा खटखटा रहा था। मैंने पूछा "कौन है?" कोई उत्तर न मिला।

आखिरी मुलाकात के बाद

१६३१ की बात है। उसी साल हिन्दू विश्वविद्यालय की रसायन-प्रयोगशाला में अरुण से मेरी पहली मुलाकात हुई थी। हम दोनों उसी साल विश्वविद्यालय में फर्स्टइयर मे भरती हुए थे। अरुण की ओर मैं क्यों आकृष्ट हुआ, कह नही सकता। वह न अमीर था, न कोई आकर्षक। हाँ, उसकी आँखों से विनय और करुणा अवश्य टपकी पडती थी।

उन दिनों मुझे एक शौक चर्राया था। मैं चाहता था कि कुछ आदमियों के जीवन के वृत्तान्त प्राप्त करूँ और देखूँ कि मानव-जीवन में कुछ सामजस्य है या नही। हाई स्कूल मे जब पढता था तो हमारे एक मास्टर साहब हमेशा कहा करते—"लाइफ इज ऐन एक्सपेरिमेण्ट"—जीवन स्वतः एक प्रयोग है।

उस समय तो न इस उक्ति का अर्थ समझता था, न समझने की कोशिश ही करता था। आज भी नहीं समझता। समझने की कोशिश जरूर करता हूँ पर कोई समझानेवाला नहीं। हाँ, मैं खुद भी अब अवसर आते ही उपर्युक्त वाक्य का प्रयोग कर बैठता हूँ—अनजाने, निरर्थक और अनावश्यक।

अरुण को देखा कि उसके रोम रोम से गरीबी फूटी पड़ती थी। चेहरे से मालूम पड़ता था कि मुसीबत की किसी चट्टान को अपने जीवन-हथौड़े से फोड़ रहा हो। फूटती नही, फिर भी हथौड़ा मारे ही जा रहा हो।

एक महीने तक परिचय और घनिष्ठता बढाने के बाद मैंने एक दिन अरुण को अपने कमरे मे बुलाया और उससे अपनी आत्म-कथा सुनाने को कहा। स्वाभिमानवश वह उस रूप मे तो न सुना सका, फिर भी बातों बातों मे मैंने उसके जीवन की बहुत सी बातें मालूम कर लीं।

दो साल पहले अरुण के माता-पिता का प्लेग से देहान्त हो गया था। अब १३ वर्ष की ऊषा नाम की छोटी बहन के सिवा उसका अपना और कोई नही था। पिताजी ने मरते समय तक चार पाच सौ रुपया बचा रखा था जो अरुण को मिला। अरुण की इच्छा थी कि किसी तरह स्कालरशिप या फ्रीशिप और ट्यूशन की सहायता से बी० ए० तक पढ़ लूँ और कही नौकरी कर लूँ, फिर उसी पॉच सौ रुपये से ऊषा का ब्याह किसी योग्य युवक से कर दूँ। किसी तरह मैट्रिक उसने दूसरी श्रेणी मे पास कर लिया था। भाई बहन वही अस्सी पर एक छोटी सी किराये की कोठरी मे रहते थे।

उस दिन मैंने अरुण से कहा कि पढो, जरूर पढ़ो। जीवन स्वतः एक प्रयोग है। इस प्रयोग में तुम जरूर सफल होगे।

—पर...... ?

—पर वह प्रयोग सफल न हो सका। अरुण को 'फ्रीशिप' न मिली क्योंकि वह न पहली श्रेणी मे मैट्रिक पास था न उसके लिये किसी प्रोफेसर या बड़े आदमी की सिफारिश थी।

सितम्बर में एक दिन मैंने सुना कि अरुण कालेज छोड़कर कहीं चला गया—अपने जीवन मे एक दूसरा प्रयोग करने या यों कहिये कि जीवन को ही प्रयोग मे परिणत करने के लिये

वह उससे मेरी पहली मुलाकात थी।

—और आज उससे दूसरी मुलाकात हुई और यही आखिरी थी। विश्वविद्यालय मे एक सभा थी। उसका विवरण लेने के लिये मैं साइकिल पर जा रहा था। मैंने देखा कोई आदमी सड़क की दाहिनी पटरी पर से जा रहा है—बिलकुल पागल की तरह। मैं पास पहुँचा, देखता हूँ; वही अरुण! पर अब उसकी आँखों में करुणा नहीं थी। मालूम पड़ता था अपने जीवन मे उसने अनेक प्रयोग किये और उन सबके चित्र अपनी आँखों मे भर लिये हैं। मैंने कहा—

"कहो भाई, अरुण, यहाँ कहाँ? पहचानते हो मुझे, कि भूल गये?"

"भूल कैसे जाऊँ, आपको भला भूल सकता हूँ! आपका ही गुरु मन्त्र तो जप रहा हूँ—'लाइफ इज ऐन एक्सपरिमेण्ट'। इतने दिन वही प्रयोग करता रहा, अब अन्तिम प्रयोग करना बाकी है।"

मैंने अरुण को साइकिल के पीछे कैरियर पर बिठा लिया। घर ले आया। अरुण को छोड़ मैं सभा मे हरगिज न जा सकता था, हालाकि वहाँ न जाना मेरे जीवन का एक साहसिक प्रयोग ही था। नौकरी छूट सकती थी। पर धीरे-धीरे ऐसे प्रयोगों का प्रति प्रयोग करना जान गया था। दूसरे दिन असोशियेटेड प्रेस द्वारा भेजा हुआ वृत्तात छपता ही, सोचा उसी से अपने राम भी काम चला लेंगे।

अरुण को पहले मैंने भर पेट खाना खिलाया। बेचारा ३-४ दिनों से भूखा था। कभी धेले के चने चबा लेता, कभी पैसे का सत्तू घोलकर पी लेता। खाना खाने के बाद उसने इधर कई वर्षों की अपनी कहानी सुनाना शुरू किया—

"कालेज मे फीस माफ न हुई इसलिये पढ़ने का विचार त्यागकर हम भाई-बहन कानपुर चले गये। अपने पास न कोई हुनर थी न वहाँ कोई जान-पहचान का ही था। वहीं कपड़े की मिलों मे क्लर्की के लिये

चक्कर लगाता रहा। बहुत दिन ठोकरें खाने के बाद एक जगह मिल गयी। तनखाह थी २० रुपये और काम था १० घण्टे रोज का। सरकार ने कानून बनाकर मजदूरों से रोज ८ घण्टे से अधिक काम लेने की रुकावट कर दी है। बीच में एक घण्टा छुट्टी भी मिलती है। पर बेचारे क्लर्कों की दशा पर अब तक किसी को दया नहीं आयी। उनकी हालत मजदूरों से भी बदतर है। १० घंटे बराबर पीसते चलो, जरा भी दम न लो। क्या करता ? पेट के लिये काम करना ही पड़ता था। इसका जो नतीजा होना था वही हुआ। मैं बीमार पड़ गया—सख्त बीमार। ऊषा मेरी शुश्रूषा करती रही। बीमारी में बचा खुचा रुपया भी साफ होता जाता था। अन्त में दो महीने की कड़ी बीमारी के बाद मैं अच्छा होने लगा तो दूसरी मुसीबत सामने आ पड़ी। अब ऊषा की बीमारी की बारी आयी। वह पड़ी। मेरी शुश्रूषा करते करते वह बीमार पड़ी, उसकी शुश्रूषा करने के लिये कोई न था। दो महीने के बाद कहीं मैं काम पर पहुँच सका था। रख लिया गया इसी को बड़ी कृपा समझता था, फिर किस मुँह से छुट्टी माँगता। अन्त में एक दिन मेरे सचित धन की आखिरी पाई और ऊषा के प्राण-पखेरू दोनों साथ ही उड़ गये। मैं दुनिया में बिलकुल अकेला रह गया। यही सोचता था कि जीवन एक प्रयोग है। ईश्वर दयालु है। भक्तों की परीक्षा लेता है, उनपर प्रयोग करता है। सफल होने पर, परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरने पर इनाम भी देता है। राह देखने लगा उस इनाम की।

एक दिन सुना कि मिल-मालिक को इस साल भारी घाटा हुआ है। यानी हरसाल मुनाफे का पहाड़ खड़ा होता था, इस वर्ष केवल 'पहाड़ी" ही बन पायी। सबकी तनखाह घटा दी गयी। मालिक ने कारबार बढाने की गरज से १० लाख रुपया कर्ज लिया। सबके साथ मेरी भी तनखाह २) घट गयी।

पिछले महीने में एक दिन रात को हमारी मिल में आग लग गयी।

लपटें जोर जोर से उठ रही थीं। अन्धेरी रात की कालिमा मे बड़ी दूर तक आस्मान लाल हो रहा था। उठनेवाली ज्वाला से मिल की ऊँची चिमनियाँ हम लोगों की ओर घूर रही थी। मैंने उन्हे हाथ जोड़ा, प्रणाम किया। वे देवियाँ थी। हम लोगों का सन्देश रोज आस्मान मे रहनेवाले देवताओं के पास जरूर पहुँचाती होंगी। वहाँ वे ही सबसे ऊँची वस्तु थी। वे मानो कहतीं—आओ, तुमको ईश्वर से मिलना है न, तुम्हें अति शीघ्र उसके पास पहुँचावे।

देखते देखते वे देवियाँ धराशायी हो गयीं। आग ने सारी मिल को चौपट कर दिया। न दमकल का बल काम आया, न आदमियों की ताकत। मालिक तो पागल हो गया। आग लगने का कारण न मालूम हो सका। मिल की आग तो बुझ गयी, पर अब मिल में काम करनेवाले हम ३००० मजदूरों के हृदयों मे आग धधकने लगी। अब हम जायं कहाँ, और खायें क्या? दूसरे ही दिन मालिक ने आत्म-हत्या कर ली! मैंने भी 'महाजनो येन गतः स पन्था' के मार्ग पर चलना सोचा, पर फिर जी में आया कि चलो काशी चले। मरना ही है तो काशी में क्यों न मरे। मुक्ति मिल जायगी। इसीलिये यहाँ आया हूँ।"

मैंने सारी बाते ध्यान से सुनीं। पूँजीवाद आज मानव जीवन पर प्रयोग कर रहा है। क्या वह उसे समाप्त करके ही रहेगा? मैंने अरुण को समझाया। काम ढूँढ देने का वादा किया। अपने यहाँ उसे ठहराया। वह भी राजी हो गया। कहाँ जाता बेचारा।

पर तीन ही चार दिन रहने के बाद वह गायब हो गया। मैंने बहुत ढूँढा पर पता न लगा। तीन दिन बाद मैंने अखबारों मे पढा कि विश्वविद्यालय के पास मोटर-दुर्घटना हो गयी थी। एक आदमी घायल होकर मर गया। उस समय मेरी कल्पना मे भी यह बात न आयी कि वह अभागा अरुण ही होगा। आज अचानक यह बात मुझे मालूम हुई।

मेरा एक मित्र विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के तीसरे वर्ष का कोर्स पढ़ता है। उसी से मिलने मैं आज वहाँ गया था। छात्रावास में जाने पर पता लगा कि मेरा मित्र सर्जरी क्लास के लिये 'डिसेक्शन रूम' में गया है। मैं भी वहाँ चला गया। मित्र को बाहर बुलाया। पूछा—क्या कर रहे हो? जवाब मिला 'एक्सपेरिमेण्ट' उसके साथ अन्दर गया। देखता हूँ कि मुर्दा चीरने की मेज पर एक लाश पड़ी है। आधी कटी थी। पास गया।

—अरे! यह तो मेरा अरुण!!

"अरुण! अरुण!" मैं चिल्ला उठा। "लाइफ इज़ ऐन एक्सपेरिमेण्ट" मरने पर भी प्रयोग?

"अविनाश! अविनाश! पागल हो गये हो तुम?"—कहकर मेरे मित्र ने मुझे बाहर खींच लिया।

मैं गा रहा था—

दुनिया कहती मुझको पागल, मैं कहता दुनिया को पागल—

मेढक का जीवन

"बदगी बाबूजी"

मैं अपने शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले नये उपन्यास का प्रूफ देख रहा था। बदगी सुनकर चौक उठा। सामने दीनदयाल को हाथ जोड़े खडा देखकर मेरी स्मृति भूतकाल की ओर दौड़ गयी।

* * *

छः सात साल पहले की बात है। उन दिनो मैं "सोने का सॉप" नामक उपन्यास लिख रहा था। जब मैं ग्राम-जीवन का चित्रण करने लगा तो मुझे खुद उसमे अस्वाभाविकता मालूम पड़ने लगी। बचपन से ही शहर में मैं पला था और होना चाहता था पक्का वस्तुवादी लेखक। अतः मैंने दो चार महीने के लिए शहर से सात मील दूर गाँव में छोटा सा बगला किराये पर तै कर लिया और अपना बोरिया बिस्तरा ले वही जाकर आसन जमाया। वह बँगला शायद किसी अमीर ने अपने विश्राम के लिए बनवाया था। दीनदयाल उसी गाँव में रहता था। मैने उसे नौकर रख लिया। शाम को मै गाँव में घूमने निकलता, गाँववालों से बातचीत करता, उनकी स्थिति अवलोकन करता और उन सब 'ईक्षणों' को रात को अपने 'सोने का साँप' में भर देता।

दीनदयाल के एक लड़का था, नाम था हीरा। उम्र बीस बाईस की होगी। एक दिन दीनदयाल ने मुझसे कहा कि हीरा कलकत्ते जाकर कमाना चाहता है। मैं लेखक था, उपन्यासकार था, आदर्शवाद मेरी नस नस में भरा था। मैंने कहा—

"जाने दो जी, क्या तुम लोग मेढको की तरह अपने गाँव में रहते हो ? अब खेती में धरा ही क्या है ? दिनभर हल जोतना, रात में रूखी सूखी रोटी खाना और अन्त में एक दिन इस दुनिया से कूच कर जाना। कोई किसान कितनी ही मिहनत क्यों न करे, रुपया बचा नहीं सकता। जाओ शहर मे कमाओ, देखो शायद भाग्य खुल जाय। छोड़ो यह कूपमण्डूकता।"

दीनदयाल की इच्छा हीरा को कलकत्ते भेजने की नही थी। वह चाहता था कि हीरा वहीं रहे। हल जोतने में फसल की रखवाली करने मे उसकी मदद करे और चैन से सत्तू नमक खाकर रहे। पर मेरी ऊँची ऊँची बातें सुनकर शायद उसे भी सोने के स्वप्न दिखने लगे। हीरा जब जाने लगा तब मैं दीनदयाल की झोंपड़ी पर उसे बिदा करने गया था। दीनदयाल, हीरा की माँ, फूफा, छोटे छोटे दोनों भाई बहन सब रो रहे थे, फूट फूटकर रो रहे थे। मालूम पड़ता था कि हीरा से यही अन्तिम मिलन है। मुझसे भी न रहा गया। उस विछोह के दृश्य ने मुझसे पूछा—

"तुमने हीरा को गलत रास्ता तो नही दिखला दिया ?"

मेरे आदर्शवाद ने तुरन्त जवाब दिया—

"नहीं, नहीं, मेढक कुएँ से बाहर निकल रहा है, निकलने दो उसे।"

पर इस उत्तर से मेरा समाधान न हुआ। खिन्न होकर मैं अपने बँगले पर लौट आया। लीली बिल्ली की पूछ पकड़ कर उसे खींच रही थी। मैं कभी लड़कों को डाँटता नही। पर न मालूम क्यों, उस दिन मैंने घुड़क कर लीली से कहा—"छोड़ उसकी पूछ !"

लीली सचमुच फूल की तरह थी। उस पर मेरे गुस्से का क्या असर। सीढ़ी पर चढ़ते ही वह मुझसे लिपट गयी और पूछने लगी—

"बाबूजी, इस बिल्ली की तरह आदमी के क्यों नहीं पूँछ होती?"

मैं क्या जवाब देता, और लीली शायद जवाब चाहती भी नहीं थी, क्योंकि वह झट से दूसरा सवाल पूछ बैठी—

"और मेढक के पूँछ होती है बाबूजी?"

"नहीं।" उसके गाल पर एक हलकी चपत जमाते हुए मैंने कहा।

"तो बाबूजी आदमी और मेढक दोनों के पूँछ नहीं होती?" ताली बजाते हुए नाच नाचकर लीली कह रही थी। मानो उसने कोई बड़ी भारी खोज की हो पर एक क्षण में लीली विमनस्क हो गयी।

"सुना बाबूजी, आज ऊ कालिज के आदमी सामनेवाली तलैया पर आये थे; सैकड़ों मेढक पेटी मे बन्द करके ले गये। ऊ क्या करेंगे उनका बाबूजी?

"बाबूजी ऊ कहत रहे कि सब मेढक काटे जायँगे। ठीक है बाबूजी, ऊ सब मेढक काटे जायँगे?

"कौन काटता है बाबूजी उनको?"

"आदमी, आदमी।" हठात मैं चिल्ला उठा, "हमारे तुम्हारे समान आदमी उन मेढकों को काटेंगे।"

मेढक का जीवन—कोई अतर्नाद बम बनकर मेरे हृदय पर गिर रहा था। मेरा हृदय खण्ड खण्ड हो रहा था। मैंने हीरा को चौपट होने के लिए तो कलकत्ते जाने की सलाह नहीं दी?

*　　　　*　　　　*

मेरा 'सोने का साँप' समाप्त हो चुका था। गाँव में रहते रहते मैं उकता भी गया था। शहर का जादू मुझे अपनी ओर खींच रहा था। दूसरे दिन मै शहर लौटनेवाला था।

उस शाम को मैं सामनेवाली तलैया के किनारे घूम रहा था। अचानक किनारे पर अस्पष्ट ध्वनि सुनाई दी। मैंने देखा, एक साँप और मेढक में लड़ाई हो रही है। साँप ने मेढक के सामनेवाले दोनों पैर मुँह मे पकड़ लिये और उसे निगलकर धीरे से अपने बिल में घुस गया। मुझे एकाएक हीरा की याद आ गयी। मेरा सर चक्कर खाने लगा। मैं भूल गया कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, क्या कर रहा हूँ। ऐसा जान पड़ा जैसे मैं नाटक देख रहा हूँ। एक पर्दा उठा। मेरे सामने मोटे मोटे अक्षरों में छपी हुई एक किताब आयी। ऊपर लिखा था 'विधाता की योजना', नीचे छोटा सा साँप बड़े मेढक को भी किस तरह निगल सकता है, इसका बयान था। मेढक के चारों पैर जब साँप के मुँह में चले जाते हैं तब वह अपने पिछले पैरों को दबाता है। इस दबाने में वह लम्बा होता जाता है। वह जितना ही अधिक जोर लगाता है उतना ही लम्बा और पतला होता जाता है और थोड़ी देर में खुद साँप के मुँह में समा जाता है।

दूसरा पर्दा उठा। मैंने देखा कि हबड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर हीरा उतरता है और कपड़े की एक बड़ी मिल के सरदार के पास जाता है। सरदार उससे हर महीने तनखाह में से दो आने रुपये कमीशन माँगता है। हीरा कबूल कर लेता है। सरदार उसे मैनेजर के पास ले जाता है और ६) मासिक वेतन पर हीरा को नौकरी मिलती है। १=) तो कमीशन के निकल जाते थे। बाकी ७|||=) की छोटी सी रकम में कलकत्ते जैसे महानगर मे हीरा का गुजर न हो सकता था। वह एक काबुली से कर्ज लेता है। और इसके बाद......जल्दी जल्दी दृश्य बदलने लगे। हीरा—शराबी हीरा!—दोपहर को सड़क पर—बेकार हीरा!! अन्धेरी रात मे—चोर हीरा!!!...कैदी हीरा। फिर चोरी, फिर कैद, फिर...खून! उसके बाद समुद्र पर जहाज हिलोरें ले रहा है। हीरा अण्डमन जा रहा है।

* * *

मैं बँगले पर कैसे पहुँचा इसका मुझे आज तक पता नहीं है, पर उसके दूसरे ही दिन मैं शहर में लौट आया। मेरा 'सोने का साँप' प्रकाशित हुआ और खूब बिका। दो तीन साल के बाद सड़क पर दीनदयाल से मेरी अचानक भेंट हुई, मैंने उससे पूछा "कहो भाई कैसे आये ?"

दीनदयाल ने हँसते हुए कहा "बचवा, मालिक के साथ विलायत गया है। उसे पहुँचाने कलकत्ते गया था।"

मैंने पास ही खड़े एक अखबार-बेचनेवाले से सेस्टेट्समैन खरीदा। विलायत के लिए रवाना हुए यात्रियों की सूची उसमे छपी थी एक जगह लिखा था—

बगाल के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता श्री उपेन्द्रमोहन चटर्जी पश्चिमी राजनीति का अध्ययन करने के लिए अपने प्राइवेट सेक्रेटरी श्री हीरालाल के साथ 'स्टेटफर्ड' जहाज से कल इंगलैण्ड के लिए रवाना हुए। वहाँ से वे रूस भी जायँगे।

उस रात को मैंने स्वप्न देखा। आसमान में एक हवाई जहाज उड़ा जा रहा है। अचानक उसके दो टुकड़े हो गये। फि रभी दोनों टुकडे उड़े ही जा रहे थे। एक जा रहा था अण्डमान की ओर और, दूसरा रूस की ओर।

* * *

हवाई जहाज की गति से तीन वर्ष और उड़ गये और एक दिन मैंने कलकत्ते के 'विश्वमित्र' में पढा—

हाल ही में पश्चिमी देशों की राजनीति का अध्ययन करके लौटे हुए कामरेड हीरालाल का टाउन हाल में 'अहिंसात्मक क्राति द्वारा साम्राज्यवाद से मुक्ति' विषय पर व्याख्यान होगा।

मेरे सामने उस समय प्राणिशास्त्र की एक किताब पड़ी थी। उसमें लिखा था—जलचर प्राणियों का स्थलचर मे उत्क्राति द्वारा रूपान्तर होने का सर्वश्रेष्ठ और निरुत्तर करनेवाला प्रमाण मेढक का जीवन है।

इस उत्क्रान्ति और हीरालाल की क्रान्ति में मेल किस प्रकार बैठाया जाय, यह मेरी समझ में न आया। मैंने कहा—दुनिया भी अजीब मेढक का जीवन है। बस, उस दिन से कलम उठायी और अपना नवीन उपन्यास "मेढक का जीवन" लिखना शुरू कर दिया।

* * *

मुझे चुप बैठा देखकर दीनदयाल ने पूछा—"बाबूजी क्या लिख रहे हो।"

मैंने कहा—"मेढक का जीवन।"

'बिहटा रेल-दुर्घटना'

बी० ए० पास होने पर भी रामलाल कुछ कुछ सनातनी बना रह गया था। औवल दर्जे का बकवादी था। जबलपुर से गाड़ी छूटते ही उसका मुँह भी गाड़ी की तेजी से होड़ लगाने लगा। मोहन से कहने लगा—"देखो मोहन, यह दुनिया भी रेल गाड़ी है। और......" मोहन का ध्यान उधर नहीं था।

गाडी छूटने के पाँच ही मिनट पहले एक पुष्पकलिका सी कोमल षोड़शी अपने वृद्ध पिता के साथ प्लेटफार्म पर आयी थी। कुलियों ने उन लोगों का सामान बिलकुल आखिरी डब्बे मे ले जाकर पटका और उन्हे वहीं बिठा दिया। मोहन बैठा था इंजन के पासवाले डब्बे मे। कुलियों को पीछे जाते देख मोहन ने मन ही मन मन्नते मानी कि हे ईश्वर, उन्हे मेरे डब्बे में आने की सुबुद्धि दे। पर कम्बख्त कुलियों का रुख न बदला। धत्तेरे की, इन बेवकूफों को इतनी भी अकिल नहीं कि किसे कहाँ बैठाना चाहिये।

उसे कुछ वैसा हो रहा था। हाँ, क्या कहते हैं उसे? 'लव ऐट फर्स्ट साइट' (प्रथम दर्शन में ही प्रेम सञ्चार)। ऐसा ही कुछ हो गया था। गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी। पर मोहन मग्न था।

उसका ध्यान रामलाल की ऋपत से भंग हुआ। उसने कहा—"सुनते हो मोहन, यह दुनिया एक रेलगाड़ी जैसी है।"

"हाँ, और तुम्हारा मुँह उसकी चिमनी है और तुम्हारा सिर है उसका कोयला भरने का डब्बा" मोहन ने कहा। मानो कोई ऋषि अपनी तपस्या भंग करनेवाले दुष्ट को शाप दे रहा हो।

"अरे, तुम इतना चिढ़ते क्यों हो? सुनो तो कैसा सुन्दर रूपक है! इजन चलने लगता है और उसके साथ साथ आखिरी डब्बा भी। दुनिया के एक कोने में छोटी सी बात होती है और उसका असर फौरन दूसरे कोने तक पहुँच जाता है।" रामलाल ने कहा।

"हाँ, ठीक तो है। चीन में लोग अपने कोट की लंबाई दो इच बड़ी रखने का फैशन चला दे तो विदेशियों की जेब में कई लाख रुपये अधिक पहुँचने लगे। विलायती माल जलाने की नीति के अनुसार हिन्दुस्तानी यदि विलायती सिगरेट जलाना शुरू करते तो दूसरे देश मालामाल हो जाते।" मोहन ने पुष्टि की।

"देखो न, रेलगाड़ी के ड्राइवर की तरह इस दुनिया को चलानेवाला भी कोई जरूर है।"

"और तुम्हारे जैसे कोयला झोंकनेवाले भी कम नहीं हैं।"

"चुप रहो, तुम्हे तो सदा मसखरी ही सूझती है। रेल गाड़ी में जैसे घंटे दो घटे के लिये साथी मिल जाते हैं, चले जाते हैं, नये आते हैं, ठीक उसी तरह इस दुनिया में भी चार दिन के साथी इकट्ठा होते हैं, फिर कूच कर जाते हैं।"

"दुनिया मे लोग जरा जरासी बातपर लड़ जाते हैं। फिर कुछ ही दिनों में मेल-मिलाप हो जाता है। वैसे ही जैसे रेलगाड़ी के डब्बे।"

रामलाल का यह रूपक चल ही रहा था पर गाड़ी एक स्टेशन पर रुक गयी। मोहन जरा 'हवा खाने' के लिए उतर पड़ा और सीधे चला गया गार्ड के डब्बे के पास। बुद्धि धिक्कारती थी पर मन नहीं

मानता था। कहीं लोग उसे उस युवती को घूरते देख न लें इसलिये वह उनकी नजर बचाने की कोशिश कर रहा था। किसी तरह उसने उस किशोरी को क्षण भर देख ही लिया।

अरे यह क्या! वह भी उसकी ओरदेख रही है। मोहन ने झट मुँह फेर लिया और आगे बढ़ने लगा। जेब से रेशमी रूमाल निकाल उसने अपना चश्मा उतार कर साफ किया। सफेद कोट पर धुएँ के साथ उड़े कोयले के कण पड़े थे, उन्हे झटकार दिया। बालों को हाथ फेर कर संवार लिया। और केवल एक बार उस चन्द्रमुख को और निहार लेने की इच्छा से उसने अपना सिर उठाया। लो, अब वह युवती उसकी ओर उँगली दिखा दिखा कर अपने पिता से कुछ कह रही थी। उसके पिता डब्बे के बाहर निकल आये और पुकारा—

"अरे कौन, मोहन!"

मोहन को पास का पेड़ कल्प-वृक्ष जैसा मालूम पड़ने लगा। वह दौड़ कर वृद्ध के पास पहुँचा और बड़ी उत्कण्ठा से पूछा—

"क्या आप मुझे पहचानते हैं?"

"मालती, यह सोहनलाल का बेटा है न?" वृद्ध ने पूछा।

"जी हाँ।" कोकिल स्वर मे मालती ने उत्तर दिया।

"कितने बडे हो गये जी तुम? जानते हो, दस बरस पहले तुम्हारे पिता सोहनलाल मानिकपुर स्टेशन पर मेरे पड़ोसी थे। याद है तुम्हे? मेरी मालती उस समय पाँच छः साल की नन्हीं थी। तुम दोनों साथ खेला करते थे, रेलगाड़ी का खेल। कभी तुम बनते ड्राइवर और मालती बनती गार्ड और कभी तुम गार्ड और वह ड्राइवर.."

मोहन सोचने लगा—अब मालती मेरे जीवन का गार्ड और ड्राइवर दोनों बन जाय। मैं डब्बा ही बना रहूँगा, बिना मालती के यह गाड़ी चलती नही दिखाई देती।

रेल ने सीटी दे दी। मोहन दौड़ता तो भी अपने डब्बे तक पहुँच न पाता।

वृद्ध ने भी कह दिया "आओ मोहन, बैठो यही, कहाँ जाते हो अब अपने डब्बे में।"

मोहन को मनमानी मुराद मिली। विधाता सब तरह अनुकूल दिखाई देते थे। उसने अपनी जेब पर हाथ रखा। अलादीन का चिराग तो उसमें नहीं आ गया था!

रूमाल हिलाकर उसने खिड़की से बाहर झाँकनेवाले उत्सुक रामलाल को अपनी स्थिति सूचित कर दी।

गाड़ी चल दी। उधर वृद्ध की बातों की गाड़ी भी चलने लगी।

"हाँ, तो देखो मोहन, यह मेरी वही मालती है।"

"बहुत खुश हुआ मैं आपको देखकर, मालती...ब.. ह...न।" न जाने क्यों मोहन की जीभ अटकने लगी।

गाड़ी की घड़घड़ाहट बढ़ने लगी। बोलनेवाले भी अपना स्वर उसी हिसाब से ऊँचा करते गये।

"मैं भी बड़ी खुश हुई हूँ, तु... आपको देखकर।"

"और सुना मोहन, यह इस साल मैट्रिक का इम्तहान देगी।"

"मैं भी इस साल एम० ए० का इम्तहान देने जा रहा हूँ।"

"अच्छा मोहन, सोहनलाल इस समय हैं कहाँ? इधर दस बरस में उनसे मुलाकात नही हुई। कभी चिट्ठी भी नही लिखते। आज सयोगवश तुमसे भेंट हो गयी।"

"आपकी चिट्ठी भी तो नहीं आती। आप लिखते तो वे भी जरूर जवाब देते। पाँच बरस हुए उनको पेन्शन हो गयी, अब हम लोग इलाहाबाद में रहते हैं।"

"तो तुम वही जा रहे हो?"

"जी हाँ।"

"चलो अच्छा हुआ। मालती, लो अब इलाहाबाद तक तुम्हे एक साथी मिल गया।"

"इलाहाबाद तक ही क्यों? जीवन के अन्त तक का साथी होने को तैयार हूँ" इच्छा होने पर भी मोहन यह कह न सका।

"अच्छा तुम अभी रूमाल हिला रहे थे। तुम्हारे दोस्त बैठे होंगे, उधर दूसरे डब्बे में। अगले स्टेशन पर उन्हें भी यहीं बुला लो। गपशप लड़ाते इलाहाबाद आ पहुँचेगा।"

"नहीं, नहीं। वे वहीं बैठेंगे। उसके पास बहुत सामान है। लाने में दिक्कत होगी। वे यहाँ न आवेंगे।"

"अच्छा सुनो मोहन, मालती का इस साल ब्याह कर डालना है, अब बहुत बड़ी हो गयी यह।" मालती की ओर ताककर मुस्कराते हुए वृद्ध ने कहा।

"देखो बाबूजी, ऐसी बात कहोगे तो मैं तुमसे न बोलूँगी।" मालती ने मुँह मोड़ते, झिड़कने का अभिनय करते हुए कहा।

"मोहन, ढूंढो कोई अच्छा वर इसके लिये। भगा दो इसको अब।"

"बाबूजी!" मालती चिल्लायी।

मोहन मन में कह रहा था—ढूँढने की तकलीफ आपको न करनी होगी। सामने ही तो बैठा है वह आपके। बिलकुल तैयार!

"मोहन, तुम्हारा ब्याह हो गया?"

मोहन की देह में गुदगुदी सी होने लगी। उसे मालूम हुआ जैसे मालती के पिता अब अपने एक हाथ मे मालती का और दूसरे मे उसका हाथ पकड कर एक दूसरे को मिलाना ही चाहते हैं। उसने झट से कह दिया—"नहीं, चाचाजी।"

"तो अब जल्दी कर डालो। आजकल अधिक दिन क्वारा रहना ठीक नहीं। मेरे दोस्त काली प्रसाद आजकल अफ्रीका में रहते हैं। उनके एक बेटी है। अभी कल ही चिट्ठी आयी है उनकी। बोलो।"

मोहन 'मलाई बरफ' हो गया। कहने का मन तो होता था कि आप के कालीप्रसाद को क्या कोई हबशी जमाई नहीं मिला, पर कहा—

"अभी तो ब्याह का विचार नहीं है। आगे देखा जायगा।"

"आगे यानी ?"

"यही जून जुलाई तक।" मैट्रिक का नतीजा निकलने का समय सोचकर मोहन ने कहा।

न मालूम क्यों वृद्ध होंठों के भीतर ही हँस रहे थे और मालती की ओर देखते भी जा रहे थे। मालती का मुँह लज्जा से लाल हो रहा था। वह धँसी सी जा रही थी।

बीच में कई स्टेशन आये और गये।

वृद्ध ने पूछा "मोहन, मालती से ब्याह करोगे ?"

मोहन ने खिड़की के बाहर मुँह निकाला। "अरे, यह तो इलाहाबाद आ गया।" मोहन चिल्ला उठा।

गाड़ी रुकी। पर मोहन की खुशी की गाडी पर 'ब्रेक' ही न लगता था। तीनो नीचे उतरे। मोहन ने मालती के पिता से कहा—"चलिये आप, मैं सामान लेकर अभी आया।"

पर वे मालती सहित उसके पीछे पीछे उसके डब्बे तक चले आये। अरे राम! अब तो रामलाल से इनका परिचय कराना ही होगा। कितना बड़ा संकट है!

"चाचाजी, ये हैं मेरे मित्र श्री रामलाल। बनारस में रहते हैं। दूसरी गाड़ी से अभी वहीं जायँगे। बहुत जरूरी काम है।" रामलाल बी० ए० में फर्स्ट हुआ था, यह बात मोहन ने पेट में ही रख ली। रामलाल को नमस्कार कर मालती के पिता कुली के पीछे पीछे चल दिये।

"और देखो मालती, इन्होंने गान्धर्व विवाह करने का निश्चय किया है। पर इनके पिताजी हैं बडे कट्टर सनातनी, इसी का खटका है।" मोहन ने कहा।

मालती ने हँसते हुए रामलाल को अभिवादन किया। मोहन बारी बारी से दोनों के मुँह की ओर गहरी निगाह से देखता था। रामलाल बनारसवाली गाड़ी पर सवार होने को जाने लगा। जाते हुए मालती और मोहन को लक्ष्य कर उसने कहा—

"मोहन, कभी कभी दो रेलगाडियों की टक्कर भी हो जाती है। जरा सम्हले रहना।"

मालती-मोहन भी स्टेशन के बाहर चले गये।

* * *

जुलाई का महीना, सवेरे का सुहावना समय है। 'मधुचन्द्र' के लिये मालती-मोहन मसूरी में पहाड पर आये हुए हैं। सजे सजाये कमरे मे मेज के दोनो ओर आराम कुर्सियों पर दोनो लेटे हैं। मोहन आज की डाक देख रहा है। रामलाल की लिखावट देखकर उसने जल्द लिफाफा खोला। उसमें लिखा था—

"भाई मोहन, तुम्हारे व्याह मे न जा सका। मेरी बधाई स्वीकार करो। मैं गाधर्व विवाह नहीं कर सकता। पिताजी ने एक जगह बात पक्की कर दी है। मुझे मंजूर करना ही होगा, नही तो घर छोड़ना पडेगा। इतनी हिम्मत नही।—तुम्हारा रामलाल।"

मोहन खिलखिलाकर हँस पडा।

मालती ने पूछा "क्या बात है? हँसते क्यो हो?"

'बिहटा रेल-दुर्घटना' कहते हुए मोहन ने मालती के गाल पर वह चिट्ठी पटक दी।

आइडमान का रहस्य

[यह कहानी बहुत कुछ कल्पना से लिखी गई है। पर सम्भव है, कहानी में लिखी हुई घटना सत्य सृष्टि मे भी हुई हो।]

रात १० बजे का समय था। लडन के १० डाउनिंग स्ट्रीटवाले मकान मे एक छोटे से कमरे मे मेज के पास तीन व्यक्ति चिन्तित मुद्रा मे बैठे थे। बाहर हथियारबन्द सन्त्री पहरा दे रहा था। उनमें से एक इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री नेविल चेम्बरलेन दूसरे परराष्ट्र मन्त्री श्री इडेन और तीसरे भारत मन्त्री लार्ड जेटलैण्ड थे। मेज पर भारत और सुदूरपूर्व का एक बड़ा नकशा फैलाकर रखा हुआ था जिससे मालूम पड़ता था कि वे तीनों पूर्व की परिस्थिति पर कुछ सलाह मशविरा कर रहे हैं।

आखिरी घूँट पीने के बाद तीनों ने अपना-अपना प्याला अलग रख दिया। श्री चेम्बरलेन ने पहले बोलना शुरू किया। उन्होंने कहा, 'दोस्तो, आप लोग देख ही रहे हैं कि इस वक्त ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिति कितनी संकटापन्न हो रही है। पूर्व मे हमारे एशियाई साम्राज्य पर जापान अपनी गृद्ध दृष्टि लगाये बैठा है। यूरोप मे भूमध्य सागर में तो इटली ने हमारे पूर्वी साम्राज्य का गला घोंटना शुरू ही कर दिया है। हम दोनों ओर

ध्यान नहीं दे सकते। इटली, जर्मनी और जापान का कोमिटर्न विरोधी समझौता हो ही गया है। इनमें से किसी को भी हम नाराज करते हैं, तो दूसरा हमें तंग करना शुरू कर देगा। ऐसी हालत मे मैंने आप लोगों को यह सोचने के लिए लिए बुलाया है कि पूर्व की स्थिति के बारे में, खास-कर भारत की रक्षा के बारे में क्या किया जाय।

लार्ड जेटलैण्ड—भारत के छ प्रान्तों मे तो कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल काम कर रहे हैं। सातवे प्रान्त में भी शीघ्र ही कांग्रेस का शासन स्थापित हो जाने की सम्भावना है। इस समय हम भारत में शान्ति चाहते हैं। हम जानते हैं कि हमें किसी न किसी दिन कांग्रेस से लड़ना पडेगा पर अभी यह समय नहीं आया है, न निकट भविष्य में उसके आने की सम्भावना है। हम इस समय भारत मे कुछ भी गड़बड होना पसन्द न करेंगे। कांग्रेस ने जिस तरह पदग्रहण करना स्वीकार किया है उसी तरह वह फेडरेशन में शामिल होना स्वीकार कर ले तो हम निश्चिन्त हो जाएँगे। इस विधान की जाल में कांग्रेस फँसेगी तो उसकी क्रान्तिकारी मनोवृत्ति शायद नष्ट हो जाय। लेनिन को कुछ दिनों मे मैं भारत भेज रहा हूँ। वे वहाँ की हालत देखकर फेडरेशन के लिए कांग्रेस के बड़े बडे नेताओं से बात चीत करेंगे। लार्ड लिनलिथगो भी शीघ्र ही दौरे पर निकलनेवाले हैं। अपने दौरे में वे राजाओं को संघ शासन मे शामिल होनें के लिये समझावे बुझावेगे। मैंने सुना है कि मुसलमान भी फेडरेशन का विरोध कर रहे हैं, पर मुझे विश्वास है कि प्रतिनिधित्व के कुछ अधिक टुकडे उनके सामने फेंक देने पर वे भी फेडरेशन मे शामिल हो जायँगे। राजाओं का विरोध तो बहुत शीघ्र पिघल जायगा। उन्हे तो हमीं ने जिन्दा रखा है, उन्हे हम चाहे जैसा नाच नचा सकेंगे……।

श्री चेम्बरलेन (बात काटकर) हाँ, अच्छी याद आई। आज सवेरे आपके पास भारत से जो एक लम्बा तार आया है उसमे क्या लिखा है ?

लार्ड जटलैण्ड—जी, वही बात मैं आपको बताने जा रहा था। बंगाल के गवर्नर सर जान ऐण्डर्सन ने वह तार भेजा है। कांग्रेसी प्रान्तों की सरकारों ने अपने-अपने प्रांत के राजनीतिक वन्दियों को छोड़ने का निश्चय किया है। कुछ बन्दी छोड़े भी गये हैं। बंगाल में सबसे ज्यादा नजरबन्द और राजनीतिक कैदी हैं। अण्डमान में अधिकतर राजनीतिक कैदी बंगाल से ही भेजे गये हैं। सौभाग्य से बंगाल का मन्त्रिमण्डल हमारे ताल पर ही नाचता है। इधर अण्डमान के राजबन्दियों ने जो अनशन किया था वह तो गांधीजी की मध्यस्थता से किसी तरह समाप्त हो गया। अब अगर हम बंगाल तथा अण्डमान के उन बन्दियों को छोड़ते नहीं तो भारी संकट की आशंका है और बंगाल का मन्त्रिमण्डल भी इससे अपनी लोकप्रियता खो रहा है। ऐसी हालत में क्या किया जाय यही एण्डरसन ने पूछा है।

श्री चेम्बरलेन—अच्छा, यह बात है। तो मुझे इस पर जरा सोचना होगा।

लार्ड जेटलैण्ड—श्री इडेन, मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। एक आशंका इधर कई दिनों से बराबर मुझे चिन्तित कर रही है। आप जानते ही हैं कि चीन अब कुछ ही दिनों का मेहमान है। जापान उसे निगल जायगा, यह बात सत्य है और कठोर सत्य है। पर निगल लेने के बाद भी उसे पचाने में क्या जापान को कुछ दिन न लगेंगे? इतने दिनों में क्या हम कांग्रेस से निबट लेने का अपना काम पूरा नहीं कर सकते?

श्री इडेन—नहीं जनाब। मैं भी यही सोचा करता था, पर अब पूरा विश्वास हो गया है कि भारत के भीतरी बखेड़े में हम फँसे कि इटली और जापान किसी भी हालत में होने पर भी हमें तंग करना न छोड़ेंगे।

श्री चेम्बरलेन—हाँ, इडेन, मैंने सुना है कि तुम्हें जापान के कुछ महत्त्वपूर्ण कागज हाथ लगे हैं। क्या है उनमें?

श्री इडेन—आपको दिखाने के लिये ही तो मैं उन्हे आज यहाँ ले आया हूँ।

इतना कहकर श्री इडेन ने अपने अटाची केस का ताला खोलकर उसमे से कुछ कागज निकाले। फिर कहने लगे—देखिये इन कागज़ों से पता लगता है कि जापान की आँख निश्चित रूप से भारत पर है। श्याम की सरकार पर आजकल जापान का प्रभाव दिन दिन बढ़ रहा है, जापान चाहता है कि श्याम और मलय द्वीप के बीच की भूमि को काटकर नहर बनायी जाय। वहाँ जमीन की चौड़ाई सिर्फ ५० मील है। जापान से भारत आने के लिये सिंगापुर होकर आना पड़ता है। क्राडमरूमध्य काटकर अगर वहाँ नहर बना दी जाय तो सिंगापुर होकर हिन्द महासागर में आने का २॥-३ हजार मील का चक्कर बच जायगा और क्रा की ५० मील लम्बी नहर प्रशान्त और हिन्द महासागरों को जोड़ देगी। भारत की रक्षा के लिये आज हमने सिंगापुर मे जो हवाई अड्डा और नौ-सेना का अड्डा बनाया है वह किसी काम का न रहेगा। मेरे मित्र श्री इयान हैमिल्टन ने भी बातचीत में एक दिन मुझे बतलाया कि सिंगापुर का अड्डा अब हमारे किसी काम का न रहेगा। उनकी राय है कि लका में त्रिंकोमाली में एक अड्डा बनाया जाय। अब आप सोचिये क्या करना चाहिये।

श्री चेम्बरलेन करीब २० मिनट तक सोचते रहे। फिर नकशे पर निगाह डाली और उनके होंठों पर हलकी सी मुसकान दौड़ गयी जो इस बात की सूचक थी कि उन्होंने कोई महत्त्वपूर्ण निश्चय किया। उन्होंने एक लम्बी अगडाई ली और कुर्सी को जरा आगे खींचकर बोलना शुरू किया—देखिये मिस्टर इडेन और लार्ड जेटलैण्ड, मैंने आप दोनों की बातों को खूब गौर से सोचा और अब एक उपाय मुझे सूझ पड़ा है। देखिये यह नकशा है। यहाँ पर यह क्रा डमरूमध्य है। और यह है आपका पोर्टब्लेयर, ठीक उत्तर पश्चिम मे है। अन्तर होगा

करीब ५ या ६ सौ मील का। अगर हम पोर्ट ब्लेयर में अपने फौजी, हवाई और नाविक अड्डे बनावे तो रूस की नहर का डर बिलकुल न रहेगा। लार्ड जेटलैण्ड, आप अडमान के सब कैदियों को भारत के जेलो मे भेजवा देने का प्रबन्ध कर दें। इससे भारतवालों का कुछ न कुछ सन्तोष अवश्य हो जायगा। उन्हे छोड़ने न छोड़ने का प्रश्न बाद में देखा जायगा। बंगाल के जेलों से बहुत से कैदियों को रिहा कर दीजिये ताकि अण्डमान के कैदी उनमे रखे जा सकें। क्यों, ठीक है न ? आप लोग सोच लें, और फिर वैसा हुक्म भारत को दे।

अपनी यह सलाह सुनाने के बाद श्री चेम्बरलेन एक बार खूब खुल कर हँसे। उनकी हँसी कह रही थी—क्यों, देखा ? कैसा है इस ब्रिटिश प्रधान मन्त्री का दिमाग !

थोड़ी देर के बाद तीनों मन्त्रियों के हाथ मे ह्विस्की का एक एक गिलास था और कुछ मिनट बाद लार्ड जेटलैण्ड और श्री इडेन १० डाउनिंग स्ट्रीट की सीढियाँ उतरकर अपनी अपनी मोटर मे जा बैठे।

'भारत के भाग्यविधाता' अपने अपने बॅगले को जा रहे थे। घड़ी में १ बज रहा था।

अनुरागिनी !

(श्री गोविन्दवल्लभ पंत का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास)

वसंत और लीला, दो परिवार के इकलौते बालक पडोस-पड़ोस में जीवन लीला शुरू करते हैं। गुड़ियों के विवाह से उनका प्रणय शुरू होता है। कालेज के दिनों का वसंत का आदर्शवाद लीला के पिता को पसद नही और वह लीला की शादी अन्यत्र तै करते हैं। लीला भी वसत की गणना मूर्खों में करने लगती है। वसंत हडताल में शामिल हो कालेज छोड़ देता है। घर छोड़ देता है और मोची का काम शुरू कर देता है। भीखू चमार उसे अपना प्रतिद्वन्दी पाता है। जो काम लीला का प्रेम या माता पिता का वात्सल्य न कर सका वह भीखू की धमकी ने कर दिया। वसंत अब केवल पालिश वाला रह गया, वह घर लौटता है। इधर लीला का विवाह होता है। नये पति को वह इन्द्रिय लोलुप और व्यसनाधीन पाती है। पति शीघ्र ही क्षयग्रस्त होकर कालग्रास हो जाता है। लीला की शिक्षिका मिस जगदम्बिका वसंत में अपने मृत प्रेमी का पुनर्जन्म पाती है। लीला के पिता लीला और वसत को विधवा विवाह के लिये राजी करते हैं। आदर्शवादी वसंत विवाह के मुहूर्त के समय फिजिक्स के एक्सपेरिमेंटों में अपने को भूल जाता है। लीला पेट्रोल छिड़ककर अपने शरीर में आग लगा देती है। इस तरह यह एक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक उपन्यास है जो हिन्दू समाज की प्राचीन रूढियों पर सफलाघात करता है। भाषा सुसज्जित है। एक बार प्रारम्भ कर बिना समाप्त किये छोड़ने को जी नहीं चाहता।

सुंदर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दो रंगा कवर, पृष्ठ सख्या ३८४, मूल्य सजिल्द केवल ४॥)

मन के गीत—

(लेखक—श्री ब्रजेन्द्रनाथ गौड, गीत लेखक, अमर पिक्चर लिमिटेड, बम्बई)

गीत, भजन, कोरस तथा अन्य सामाजिक व सामुहिक रूप से गाने योग्य गीतों का अभूतपूर्व सग्रह !

इस संग्रह में जो गीत हैं, वे रेडियो, फिल्म और रिकार्डिंग के लिये लिखे गये थे, जिनमे बहुत से गीत प्रयोग में लाये जा चुके हैं। इस प्रकार के मधुर, हृदय ग्राही और आकर्षक गीतों का दूसरा सग्रह हिन्दी में आज तक प्रकाशित नहीं हुआ ।

"मन के गीत" की एक प्रति प्रत्येक सगीत और काव्य प्रेमी परिवार में होना आवश्यक है। इसके गीतों को पढ़कर आप फिल्मों के अश्लील और अनाकर्षक गीतों को भूल जायँगे ।

"मन के गीत" में विभिन्न प्रकार के ८७ गीत सग्रहीत हैं, छपाई, सफाई, अत्यत आकर्षक व नयनाभिराम है। अभी से याद रखिये कि उपहार में देने योग्य, यह छोटी सी पुस्तक जिसका मूल्य केवल ॥=) है आपको बहुत पसद आवेगी और मित्रों से बचाने के लिये आपको इसकी रक्षा करनी होगी। पुस्तक हाथ में आने पर आप इस बात की सत्यता का अनुमान लगा सकेंगे।

कवि "प्रसाद", आँसू तथा अन्य कृतियाँ

[लेखक—प्रोफेसर विनय मोहन शर्मा, एम० ए०, एल० एल० बी०]

"प्रसाद" आधुनिक हिन्दी काव्य के आदि कवि कहे जाते हैं। अतः उनके विषय में यह प्रश्न उठना कि उन्होंने अपने काव्य में

अतीत से कितना ग्रहण किया, वर्तमान को क्या प्रदान किया और अपने समय से झाँकने वाले भावी युग को कितने अंश में पहचानने की चेष्टा की, स्वाभाविक है। लेखक ने इस पुस्तक में इन सभी प्रश्नों को हल करने का सफल प्रयास किया है। प्रगतिशील काव्य की शास्त्रीय विवेचना भी की गई है और वर्तमान आलोचना के मापदंड पर भी 'प्रसाद' के कवि को तोलने का प्रयास किया गया है।

'प्रसाद' के आँसू, कामायनी, आदि सभी प्रमुख काव्य ग्रंथों की निष्पक्ष समीक्षा की गई है। इसके अतिरिक्त लेखक ने आधुनिक काव्य के रहस्यवाद-छायावाद आदि वादों को समझाते हुए "प्रसाद" को "वाद" से परे यौवन और प्रेम का सफल कवि सिद्ध किया है।

परिशिष्ट मे विद्यार्थियों की सुविधा के लिए "आँसू" की दुरूह पंक्तियों का अर्थ भी दे दिया गया है और 'प्रसाद' के जीवन की झलक भी।

"प्रसाद" के काव्य साहित्य का अध्ययन करनेवालों को इस ग्रंथ से बड़ी सहायता मिलेगी। लेखक ने कवि की आत्मा के साथ समरस होकर अपने को व्यक्त किया है। लेखन शैली रोचक और आकर्षक है। पढ़ने में दिमाग पर जरा भी बोझ नहीं अनुभव होता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ संख्या १६०, मूल्य २)

"इसमें 'प्रसाद' की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी-कविता, 'प्रसाद' का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद—छायावाद, प्रगतिवाद, तथा-नियतिवाद का क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद' के प्रधान काव्य ग्रंथों का विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद' के काव्य को भली भाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादन के लिये यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।"

—विशालभारत, कलकत्ता, मार्च १९४५